तिरुक्कुरल सतसई

संत तिरुवल्लुवर विरचित तिरुक्कुरल के
दोहानुवाद के 1330 दोहों से चुने
700 दोहे

अनुवादक तथा संपादक
मु. गो. वेंकटकृष्णन, एम. ए.,
अवकाश-प्राप्त हिन्दी प्राध्यापक,
अलगप्पा कालेज, कारैकुडि
तमिलनाडु

प्रकाशक

पुस्तक का नाम :

रचयिता :

हिन्दी में अनुवादक :

विषय :

प्रकाशक :

मुद्रक :

संस्करण :
प्रतियाँ :
मूल्य :
प्रतियाँ मिलने का पता :

तिरुक्कुरल सतसई (तिरुक्कुरल का संक्षिप्त संस्करण)
तिरुवल्लुवर
मु. गो. वेंकटकृष्णन
सांसारिक तथा आध्यात्मिक जीवन के सभी पहलुओं पर विचार
दि इंडो-स्विस सिंतेटिक जेम मेनुफेक्चरिंग कं. लि, 13/239, मेयिन रोड,
मेट्टुपालयम-641 301
हिन्दी प्रचार प्रेस, मद्रास-600 017
प्रथम 27-10-82
3000
रु. 20-00
रामलिंगर पणि मन्रम,

31, पोयस गार्डन, मद्रास-600 086

Title : Thirukkural
Satsayee (abridged

Author :

Hindi Version :

Subject :

Publishers :

Printers :

Edition :

Copies :

Price :

Copies available from :

edition of Thirukkural)

Thiruvalluvar

M. G. Venkatakrishan

All aspects of worldly and Spiritual life

The Indo-Swiss Synthetic Gem Manufacturing Co. Ltd.
13/239, Main Road,
Mettupalam-641 301

Hindi Prachar Press, Madras-600 017

First 27-10-82
3000
Rs. 20-00
Ramalingar Pani Manram,
31, Poes garden,
Madras-600 086

समर्पण

श्रीयुत गो. वन्मीकनाथ जी

जो सहृदय एवं तमिल, हिन्दी और अंग्रज़ी के
प्रकांड विद्वान तथा प्रेमी हैं
जिन्होंने श्री कांची कामकोटि पीठाधिप
जगद्गुरु
श्री चंद्रशेखरेन्द्र सरस्वती श्री
शंकराचार्य जी के
प्रथम दर्शन होने पर ही उनका यह
आदेश और

आशीर्वाद पाये कि—'तुम ऐसी ही
तमिल भाषा की
सेवा करते रहो'—और उसके अनुसार
जो तमिल भाषा की सेवा को अपने जीवन का
परम लक्ष्य
मानकर कई उत्तम धार्मिक ग्रंथों का
अंग्रेज़ी में
अनुवाद तथा समीक्षा प्रस्तुत करते
रहते हैं
जिनकी
प्रेरणा और मार्गदर्शन से मैं संपूर्ण तिरुक्कुरल का
दोहे में अनुवाद कर सका
जिन्होंने तिरुक्कुरल प्रचार संघ की स्थापना
करके
उक्त अनुवाद को प्रकाशित किया और
उसकी प्रतियाँ
हिन्दी भाषी राज्यों में स्थित हज़ारों
शिक्षण

संस्थाओं को प्रदान कराया

जो श्री शंकराचार्य जी के परम भक्त रहते हुए

उच्च सरकारी पद से अवकाश-प्राप्त

अपने

संत-जीवन से मित्र तथा बंधु-मंडली

को

प्रभावित कर रहे हैं और

जो मेरे परम हितैषी हैं उनको

तिरुक्कुरल सतसई

सादर समर्पित

विनीत, **मु. गो. वेंकटकृष्णन**

ईश-स्तुति

जगत सर्व को, साध्य नहीं सा, भावित वर्णन,
जिसका है।
विधु राजित, गंगा-जल पूरित, जटाजूट वह,
जिसका है।

ज्योति अपरिमित, वह तो करता, रंग-मंच पर,
नर्त्तन है ।
नूपुर-सज्जित, चरण कमल की, हम करते स्तुति,
वंदन हैं ।।

पेरिय पुराण-चेक्किषार (छंद-शोकहर)

वह कुंडलधर जो, वृषारूढ है, विमल धवल विधु,
सीस धरे ।
चित-चोर रहा मम, जो मसान की, धूल धूसरित
देह धरे ।
जब पूर्व एक दिन, कमलासन ने, किया स्तवन कर,
नमन जहाँ ।
उस ख्यात ब्रह्मपुर,
में अनुग्राहक, है न यही तो देव महा ।।

तिरुज्ञानसंबंधर (छंद-त्रिभंगी)

वह रहा दुर्ज्ञेय है, संत चित्त में वास है
सुवेद का सार वह, अणु सम चीज है ।
तत्त्व क्या न जाने कोई, वह मधुर मधु दूध
है
उज्ज्वलित तेज वह, चिदंबराधीश है ।
देवराज इन्द्र तथा विष्णु चतुरानन में
अनल अनिल वैसे, जलधि पहाड़ में ।

व्याप्त उस महान की, गुण चर्चा बिना किये
जो जो दिन बीत गये, सब गये भाड़ में ।।
तिरुनावुक्करशर (छंद-कवित्त)

कलादेवी-वंदना

खेतों में जा प्रिय हल लिये जोतते श्री करों में

।

औ' वाणी में सुकविजन की नीति से पूर्ण जो है ।
ज्ञानी के भी करुण रस से पूर्ण नीके हिये में ।

देवी तू है तव

चरण हों दास मेरे शरण्य ।।
कविमणि देशिक विनायकम पिल्लै (छंद-मंदाक्रान्ता)

प्रार्थना

जय जय साधु दयालु जन, जय सुरगण गो वृन्द ।

अमृत वर्ष हो काल में, राजा रहें समृद्ध ।
पातक का नाश हो दिक दिक में सब हर नाम ।
गूंज उठे, जिससे बने, दुःख रहित नर-धाम ।।

तिरुज्ञानसंबंधर

राष्ट्र की सेवा में

(बच्चों का संकल्प)
जन्म भूमि हमारी! तुझको, हम करते यह प्रण हैं ।
प्रेम हमारा औ' परिश्रम, तब के सब अर्पण हैं ।
हो जायेंगे जब बड़े हम, भावी के वर्षों में ।
गिनती होगी औ' हमारी, कौमी स्त्री-पुरुषों में ।।
स्वर्ग के पिता! तू कर रहा सबको यहाँ प्यार है । मदद तेरे बच्चों की कर, सुनता जब पुकार है ।
युग युग में वे तो बनावें, उन्हें यह निर्धार है ।
परंपरा पावन महा जो, रहित भ्रष्टाचार है ।।

तू हमें दे ऐसा बल भी, जिससे कभी दीन को ।
पीड़ा मन या कर्म से हम, नहीं दें बल-हीन को ।
तेरे आश्रय में हम रखें, बल जो है मर्दों में ।

जो मनुज को सुखी करेगा, उसके दुख-दर्दों में ॥

जन्म-भूमि ! तुझपर हमारा, भरोसा अभिमान है।
तेरे हित बाप-दादों ने, दिये अपने प्राण हैं।

मातृ-भूमि अरी ! तुझको फिर, हम करते यह प्रण हैं।
बुद्धि, भाव, कर्म भावी के, वर्षों के अर्पण हैं ॥

रडयार्ड किपलिंग (छंद-शुभगीता)

[भावानुवाद—मु. गो. वेंकटकृष्णन]

कृतज्ञता ज्ञापन

श्रीयुत एन. महालिंगम जी न केवल बड़े धनी हैं परंतु बड़े दानी भी हैं। विख्यात उद्योगपति होते हुए आप साहित्य तथा कला संबंधी कार्यों में बड़ी अभिरुचि रखते हैं। वैसे तो स्वभाव से आपकी प्रवृत्ति धार्मिक होने के कारण धार्मिक ग्रंथों को प्रकाशित करने में आपको बड़ा उत्साह रहता है और उसके लिये सहायता मांगने पर

आप इतने सहज स्वभाव से देते हैं मानों आप लेनेवालों का आभार मानते हों। तैत्तिरीय उपनिषद में यह आदेश है—"श्रद्धा से देना। अश्रद्धा से न देना। भाग्यानुसार देना। विनय से देना। डरते देना। समझ कर देना।" इसके अनुरूप देनेवाले श्री महालिंगम जी हैं, यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। आप संत श्री रामलिंगस्वामी जी के परम भक्त हैं और स्वामीजी से निर्दिष्ट "समरस शुद्ध सन्मार्ग" के तत्वों का प्रचार विश्व भर में करने के लिये 'रामलिंग मिषन' का आयोजन करके उसके आप अध्यक्ष हैं। प्राचीन सभ्यता के शोध के लिये स्थापित अंतर्राष्ट्रीय संघ के भी आप अध्यक्ष हैं।

सन् 1967 में तिरुक्कुरल प्रचार संघ के संस्थापक श्री वन्मीकनाथजी ने 'उत्तरवेद' के नाम से संपूर्ण तिरुक्कुरल का मेरा हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने के लिये जब श्री महालिंगम जी से सहायता मांगी तब आपने तुरन्त बड़ी उदारता के साथ

हाथ बंटाया और ग्रंथ की एक हज़ार प्रतियाँ हिन्दी भाषी राज्यों में स्थित शिक्षण संस्थाओं को वितरित करने के लिये यथेष्ट धन दिया। यही नहीं ग्रंथ का प्रमोचन करने के लिये, दिनांक 29-8-67 को मद्रास के कलैवाणर रंग-भवन में बड़े समारोह का आयोजन किया और भारत सरकार के शिक्षा मंत्री श्री शेरसिंह द्वारा ग्रंथ का प्रमोचन संपन्न हुआ। उस अवसर पर आपने बड़ी उदारता से मुझे सम्मानित किया।

viii

तिरुक्कुरल सतसई को प्रकाशित करने के लिये जब श्री महालिंगम जी से प्रार्थना की गई तब आपने बड़ी कृपापूर्वक स्वीकार की और उसके फलस्वरूप तमिल साहित्य का यह उत्तम ग्रंथ पाठकों के कर-कमलों में है। इस महान उपकार के लिये मैं आपका कितना कृतज्ञ हूँ यह व्यक्त करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं।

ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि वह आपको स्वस्थ और सुसंपन्न रखते हुए दीर्घायु प्रदान करे जिससे आपके सारे सत्कार्य निरंतर चलते रहें।

श्री भगीरथन रामलिंगर पणि मन्रम के मंत्री हैं और इस ग्रन्थ के मुद्रण करने का सारा प्रबन्ध उन्होंने किया। मिलता तो यह ग्रन्थ इतने सुन्दर ढंग से

उनका पूर्ण सहयोग मुझे न प्रकाशित करने की सफलता मुझे न मिलती। एतदर्थ मैं उनका बड़ा आभार मानता हूँ।

विजयादशमी,

विनीत,

27-10-'82

सु. गो. वेंकटकृष्णन

श्री गुरुभ्यो नमः

तिरुक्कुरळ - माहात्म्य

[तिरुक्कुरल प्रचार संघ से प्रकाशित तिरुक्कुरल का
संपूर्ण अनुवाद 'उत्तरवेद' से उद्धृत]

श्री कांचीस्थित कामकोटि श्री शंकर भगवत्पाद
अखिल जगत के गुरु महान से पाकर वरप्रसाद
'तमिष् वेद' यों प्रथित ग्रंथ का दोहे में अनुवाद
प्रस्तुत है इसके प्रचार से जग का मिटे विषाद ।

(छंद-सरसी)

चतुरानन ने तिरुवल्लुव का ले करके अवतार

तीन भाग में चतुर्वेद के ले तत्वों का सार
रचा ग्रंथ जो उसके गुण का वाक् करे जय-गान
मन चिंतन सिर वंदन उसका श्रवण करे नित कान ।

(उग्रप्पेरुवषुतियार)

बुध-जन मानित बहुशास्त्रों में वेदों में अव्यर्थ
पोषित हो जो प्रतिपादित हैं सब कहने के अर्थ
तीन कांड में कविश्रेष्ठ ने सर्जन किया महान
कवि-समाज में तिरुवल्लुव के कोई है न समान ।

(आशिरियर नल्लंदुवनार)

तमिल साहित्य के सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ तिरुक्कुरल के

रचयिता तिरुवल्लुवर को सारे संसार की महान विभूति मानते हुए कविवर श्री सुब्रह्मण्य भारती ने गाया—

> वल्लुव को दे कर जगत को अमर कीर्ति पायी
>
> तमिल-नाडु ने महान कीर्ति पायी'।

11

X

यह सर्वथा सत्य है कि तमिल-नाडु की यह देन न केवल भारत को है परंतु अखिल जगत को है। तिरुवल्लुवर किसी एक जाति, संप्रदाय, धर्म, देश या काल के नहीं थे। वे इन सबके परे थे या यों कहिये कि वे सबके थे। उनकी अनुपम कृति तिरुक्कुरल में प्रतिपादित तथ्य सार्वदेशीय और सार्वकालीन हैं।

तिरुवल्लुवर के जन्मकाल, जन्मस्थान और जीवन के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। यद्यपि उनकी जीवनी की कई रोचक कथाएँ प्रचलित हैं फिर भी उनको प्रमाणित करने का आधार न होने के कारण मैं इतना कहकर संतोष कर लेता हूँ कि तिरुवल्लुवर का जन्म

लगभग दो हजार वर्षों के पहले यानी ईसा के पूर्व
तमिल-नाडु में हुआ था। उनकी महत्ता इसमें है कि
शैव, वैष्णव, जैन और बौद्ध उन्हें अपने अपने धर्मावलम्बी मानते हैं और उसपर गर्व करते हैं। तिरुक्कुरल के प्रथम अध्याय ईश्वर-स्तुति में इस प्रकार की स्तुति की गयी है कि भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी उसे अपने ही ईश्वर की स्तुति मानते हैं। उसके
आधार पर तिरुवल्लुवर की जाति या
धर्म का निर्णय करना असंभव है। उसी प्रकार सारे धर्म-कांड
में प्रतिपादित विषय—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, संयमशीलता,
निर्लोभता, गार्हस्थ्य,
प्रेमभावना, संन्यास, तप, नियति आदि सभी धर्मावलम्बियों को
मान्य होने के ढंग से वर्णित हैं।
इसलिये उनके आधार पर भी तिरुवल्लुवर को
किसी मत, संप्रदाय, या
जाति के संकुचित दायरे में लाना असंभव है। हाँ, इतना
अवश्य कहा जा सकता है कि वे विश्वबंधुत्व के सिद्धान्त पर
विश्वास करनेवाले महामानव थे।

उनकी महान कृति तिरुक्कुरल की महिमा इसी से
सिद्ध होती है कि उसकी
प्रशंसा में एक स्तोत्र-माला है जिसमें 53 पद्य-पुष्प हैं। पद्यों की रचना तिरुवल्लुवर के समकालीन और बाद के श्रेष्ठ कवियों से की गयी है। पांड्य राज्य

के महाराज उग्रप्पेरुवघुदियार ने, जो तिरुवल्लुवर के समकालीन थे, तिरुक्कुरल का आदर करते हुए मुक्तकंठ से जो उसका गुण-गान किया उसका और 'कवि आशिरियर नल्लंदुवनार' की प्रशंसा का पद्यानुवाद करके मैंने इसके आरंभ में दिया है। ऐसे ही सभी पद्य तिरुक्कुरल की प्रशंसा में एक से एक होड़ करनेवाले हैं। तमिल भाषा में

'कुरल' शब्दार्थ 'छोटा' है और वह छंद-विशेष का भी नाम है। 'तिरु' आदर सूचक शब्द है। 'कुरल' के जैसे अति छोटे छंद में महान विषयों को समा कर
रखने की तिरुवल्लुवर की अद्भुत क्षमता की प्रशंसा
कवि कपिल ने कलात्मक और स्वाभाविक ढंग से की है।
उन्होंने कहा है—"जैसे एक छोटी-सी घास की नोक
पर पड़ी तिन्नी से भी लघु ओस की बूँद ऊँचे ताड़ के पेड़ को
वैसे 'कुरल' महान विचारों को प्रकट करता है।"

प्रतिबिंबित करती है

इस ग्रंथ में मानव जीवन के सभी पहलुओं पर विचार किया गया है और विचारों की
अभिव्यक्ति के लिये शब्दों के चयन में, अलंकार योजना में और समास शैली के प्रयोग में तिरुवल्लुवर की जो अलौकिक प्रतिभा प्रस्फुटित होती है उससे सहृदय पाठक मुग्ध हुए बिना न रह

सकते ।

तिरुक्कुरल के तीन भाग हैं—धर्म, अर्थ और काम । उनमें क्रमशः 38, 70 और 25 अध्याय हैं । हर एक अध्याय में 10 'कुरल' के हिसाब से समूचे ग्रंथ में 1330 'कुरल' हैं ।

यह मुक्तक काव्य होने पर भी विषयों के प्रतिपादन में एक क्रमबद्धता है और विपयों की व्यापकता विषय-सूची को देखने से ही ज्ञात हो सकती है । जबकि धर्म-कांड में ईश्वर-स्तुति, गार्हस्थ्य, संन्यास, अध्यात्म, नियति का बल आदि व्यक्तिगत आचारों और व्यवहारों पर विचार किया है, अर्थ-कांड में राजनीति के अलावा, जिसके अंतर्गत शासकों का आदर्श, मंत्रियों का कर्तव्य, राज्य की अर्थ-व्यवस्था, सैन्य आदि आते हैं, सामाजिक जीवन की सारी बातों पर विचार किया गया है। दो हज़ार वर्षों के पहले तिरुवल्लुवर के हृदय सागर के मंथन के फलस्वरूप निकले हुए सुचिन्तित विचार रत्न इतने मूल्यवान हैं कि बीसवीं शताब्दी के इस अणु युग में भी इनका महत्व और उपयोगिता कम नहीं हुए हैं और इसमें संदेह नहीं है कि चिर काल तक ये बने रहेंगे । धर्म और अर्थ-कांड नीतिप्रधान होने पर भी उनमें कविता की सरसता और सौंदर्य हैं ही । फिर काम-कांड की तो क्या पूछना ? संयोग और विप्रलंब शृंगार की ऐसी

हृदयग्राही छटा अन्यत्र दुर्लभ है। मुक्तक काव्य की तरह जहाँ एक-एक 'कुरल' अपने में पूर्ण हैं वहाँ सारे कांड में एक सुंदर नाटक का सा भान होता है। इस नाटक में प्रधान पात्र नायक और नायिका हैं और उनकी सहायता के लिए एक सखी और एक सखा का भी आयोजन हुआ है। पूर्वराग, प्रथम मिलन, संयोगानन्द विरह-दुःख फिर पुनर्मिलन के साथ यह सरस कांड समाप्त होता है।

तिरुक्कुरल माहात्म्य के इस संक्षिप्त वर्णन में एक 'कुरल' का भी उद्धरण मैं न दे सका। कारण एक तो स्थानाभाव है। दूसरा उद्धरण के लिये किसको लूँ अथवा किसको छोड़ूँ? यही समस्या थी। विज्ञ पाठक के कर- कमलों में सब हैं ही। प्रार्थना है कि अध्ययन और मनन कर लें।

दोहा छंद में तिरुक्कुरल का अनुवाद करने का उद्देश्य यह है कि पद्यानुवाद से मूल 'कुरल' की तरह नीतियों को कंठस्थ करने में सुगमता होगी। दोहा छंद कुरल के समान छोटे होने और हिन्दी में नीति संबंधी संत साहित्य अधिकतर उसी में रहने के कारण मैंने अनुवाद के लिये इसको उपयुक्त समझा। अनुवाद करते समय यथाक्रम इन बातों को ध्यान में रखा

गया है :—1. मूल का भाव ज्यों का

त्यों रहे ।

2. शब्द विन्यास जहाँ तक हो सके मूल के अनुरूप हो ।

3. भाषा खड़ी बोली और प्रसाद गुण पूर्ण हो ।

4. दूसरी भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने योग्य यह अधिकृत अनुवाद रहे ।

भारतीय भाषाओं और विश्व की कई भाषाओं में तिरुक्कुरल का अनुवाद हो चुका है ।
विशेषतः कई अनुवाद हिन्दी में हो चुके हैं ।
फिर भी यह पहला
अनुवाद है जो सीधे मूल ग्रंथ से दोहे में किया गया है ।
तिरुक्कुरल के प्रसिद्ध टीकाकार श्री परिमेलषगर की व्याख्या के आधार पर प्रायः भावों का प्रतिपादन हुआ है । पंद्रह बीस वर्षों से ऐसा अनुवाद करने का विचार मेरे मन में उठता था और बार बार कार्यारंभ करके छोड़ देता था । आखिर तिरुच्चिरापल्ली के तिरुक्कुरल प्रचार संघ के उत्साही व्यवस्थापक श्री गो. वन्मीकनाथजी से, संयोग से, मेरा परिचय हुआ ।
उन्होंने न केवल मुझे यह अनुवाद करने के लिये प्रेरित किया परंतु मूल तिरुक्कुरल के भावों को ठीक ठीक समझ

कर अनुवाद करने में अपने बहुमूल्य सुझाओं से मेरा बड़ा उपकार किया। उनकी सतत प्रेरणा मुझे न मिलती तो मैं इस काम में प्रवृत्त न होता। एतदर्थ मैं उनका बड़ा आभार मानता हूँ।

अनुवाद का कार्य आरंभ होने के पहले ही श्री कांची कामकोटि पीठाधिपति जगद्गुरु श्री शंकराचार्य ने परम अनुग्रह करके आशीर्वाद दिया कि तिरुक्कुरल का अनुवाद पूर्ण होकर रहेगा। उनकी अमोघ वाणी के फलस्वरूप सन् 1964 अक्तूबर में धर्म-कांड का अनुवाद पूरा हुआ और विजयादशमी के दिन उसका प्रकाशन कांचीपुरम में पूज्यपाद आचार्यजी के करकमलों से हुआ। ठीक दो वर्षों के बाद सन् 1966 अक्तूबर में विजयादशमी के दिन सारे ग्रंथ का अनुवाद संपन्न हो गया।
यदि मैं यह कहूँ कि यह अनुवाद श्री गुरुमहाराज का वरप्रसाद हैं तो उसमें किंचित् भी अत्युक्ति नहीं। उनके चरणारविन्दों पर कोटि कोटि प्रणाम करते हुए मैं आशा करता हूँ कि इस अनुवाद के द्वारा हिन्दी के ज्ञाताओं को तमिल साहित्य के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ के उत्तम विचारों को हृदयंगम करने का अवसर मिलेगा और ऐसे ही ज्ञान के आदान-प्रदान से

भारतीय भावनात्मक एकीकरण दृढ़ हो जायेगा।

कारैक्कुडि,
विनीत अक्तूबर सन् 1966

एम. जी. वेंकटकृष्णन

भूमिका

संपूर्ण तिरुक्कुरल का अनुवाद

'उत्तरवेद' शीर्षक के साथ, जो तिरुक्कुरल का अन्य नाम है, सन् १९६७ में तिरुच्चिरापल्ली में स्थापित तिरुक्कुरल प्रचार संघ के द्वारा प्रकाशित कराने के बाद यह तिरुक्कुरल-सतसई प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। तिरुक्कुरल की सतसई प्रस्तुत करने का मेरा उद्देश्य एक तो उसे कुछ संक्षिप्त करना है, दूसरा संस्कृत, हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में सप्तशती या सतसई की जो परंपरा चली आयी है उसके अनुरूप यह सतसई भी बनाकर इसके प्रति हिन्दी भाषियों का ध्यान आकर्षित करके इसे लोकप्रिय बनाना है।

संस्कृत में आर्या-सप्तशती और गाथा-सप्तशती प्रसिद्ध हैं। वैसे तो श्रीमद् भगवद्गीता में भी 700 श्लोक हैं। हिन्दी में प्रसिद्ध बिहारी-सतसई के साथ तुलसी, रहीम, वृन्द, मतिराम, रसनिधि, रामसहाय, विक्रम, चंदन, वियोगी हरि आदि कितनी सतसइयाँ हैं। प्रधानतः इन मुक्तक काव्यों का विषय नीति, भक्ति और शृंगार रहा है। परंतु तिरुक्कुरल-सतसई में प्रतिपादित विषय मानव-जीवन के

सभी पहलुओं से संबंधित हैं
कुछ विस्तृत रूप से मैंने इस

। 'तिरुक्कुरल-माहात्म्य' में, जो अन्यत्र प्रस्तुत है,
विषय पर लिखा है। इसलिए मैं उन बातों को दोहराना
नहीं चाहता।

तिरुक्कुरल मूल ग्रंथ की विषय-सूची भी इस पुस्तक में दी गई है जिससे विज्ञ पाठकों को यह अनुमान हो जाय कि उसके 133 अध्यायों में कितने विषयों पर विचार किया गया है। उन अध्यायों में प्रतिपादित विचारों को व्यापक दृष्टि से सात शतकों में विभाजित करके कुल 1330 दोहों में से 700 दोहों को चुनकर मैंने प्रस्तुत संग्रह में दिया है। मूल ग्रंथ में गार्हस्थ्य धर्म पर 20 अध्याय हैं और उनके 200 दोहों में से 100 दोहे गार्हस्थ्य शतक में दिये गये हैं। संन्यास, उपोद्घात और नियति प्रकरणों को मिलाकर 18 अध्याय हैं। उनके 180 दोहों और कुछ अन्य अध्यायों से भी 100 दोहे विवेक शतक में दिये गये हैं। अर्थ-कांड में राजा और अमात्य से संबंधित नीतियाँ जो हैं वे प्रजातंत्र के इस युग में साधारण लोगों के लिए भी लागू हो सकती हैं।

इसलिए उस कांड के 70 अध्यायों में प्रतिपादित बातों को राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति नामक तीन शतकों में बांट दिया है। काम-कांड के 25 अध्यायों से शृंगार शतक का संकलन हुआ है। इनके अतिरिक्त जो सामान्य सूक्तियाँ रह गई हैं उनको सूक्ति शतक के अंतर्गत रखा गया है। इस प्रकार इस संकलन में यों सात शतक संगृहीत हैं:—

1. सूक्ति शतक	4. राजनीति शतक
2. गार्हस्थ्य शतक	5. अर्थनीति शतक
3. समाजनीति शतक	6. शृंगार शतक

7. विवेक शतक

दोहों की क्रम-संख्या के साथ मूल ग्रंथ में 'कुरल' की जो संख्या है उसे भी इसमें दिया गया है। उसके द्वारा पाठक यह जान सकते हैं कि वह किस अध्याय से उद्धृत हैं। उदाहरण के लिए किसी दोहे में मूल ग्रंथ की संख्या 391 हो तो यह समझना चाहिए कि वह 40-वें अध्याय में है (391 से 400 तक उस अध्याय में हैं) और उसकी विषय सूची से यह ज्ञात हो जायगा कि वह अध्याय 'शिक्षा' शीर्षक है।

पाठ्य पुस्तकों में वर्ग के स्तर के अनुसार तिरुक्कुरल के दोहों को भी सम्मिलित करने में भी इस संकलन के द्वारा अधिक सुविधा होगी ऐसी मेरी आशा है। इसका संकलन करते समय यह ध्यान में रखा गया है कि तिरुक्कुरल के 1330 'कुरलों' में जो अत्यधिक प्रचलित, सरस, सारगर्भित, प्रभावात्मक तथा उक्तिवैचित्र्य-पूर्ण हैं वे सब इसमें उद्धृत हो जायें। इसका तात्पर्य यह नहीं कि 'कुरल' के जिन दोहों को इस संग्रह में स्थान नहीं मिला है वे नीरस या कम महत्वपूर्ण हैं।

मेरी यही कामना है कि तिरुक्कुरल का अध्ययन करनेवाले उसमें प्रतिपादित नीतियों का अपने जीवन में पालन करें और आदर्श भारतीय रहें।

मु. गो. वेंकटकृष्णन

तिरुवल्लुवर और हिन्दी के कवि

इस लेख में तिरुवल्लुवर और कुछ हिन्दी के कवियों के केवल भाव-साम्य पर प्रकाश डालने का मेरा विचार है न कि विस्तृत रूप से तुलनात्मक विवेचन करने का। यह देखा जाता है कि भिन्न भिन्न देशों में तथा भिन्न भिन्न कालों में रहनेवाले भिन्न भिन्न भाषा-भाषी महान व्यक्तियों के विचारों में भावैक्य होता है जो आश्चर्यजनक दिखने पर भी स्वाभाविक है। कारण यह है कि सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक मानव-समाज में होनेवाली मूलभूत समस्यायें समान रही हैं।

इसलिये उनका सामना करते हुए उनका हल करने के लिए व्यक्त किये मनीषियों के विचारों में साम्यता होगी ही ।
' महान लोगों का विचार समान होता है '—यह उक्ति तिरुवल्लुवर और कुछ हिन्दी के कवियों के संबंध में कहाँ तक सार्थक होता है इसकी
एक झलक इस लेख में मिलेगी और मेरी आशा है कि सहृदय पाठकों को यह रोचक सिद्ध होगी ।

हिन्दी कविता के सामान्य ज्ञाता तमिल भाषियों को तिरुवल्लुवर के साथ झट कबीर ही याद आते हैं ।
काल और देश की दृष्टि से यद्यपि दोनों बहुत दूर रहते
हैं—तिरुवल्लुवर लगभग दो हजार वर्ष पूर्व के
हैं और कबीर पांच

कबीर :

सौ वर्ष पूर्व के ;
एक सुदूर दक्षिण भारत के हैं और दूसरे उत्तर के
—फिर भी
कई बातों में दोनों बहुत निकट आते हैं । दोनों की जीवनी के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता ।
फिर भी इतना
ज्ञात है कि दोनों जुलाहे थे और संत जीवन बितानेवाले थे ।
दोनों मानवता के प्रेमी

थे और जातिगत, धर्मगत तथा वर्गगत भेद-भावों के विरुद्ध थे। दोनों अपने विचारों को निर्भीक प्रकट करते थे जिससे वे क्रांतिकारी कवियों की श्रेणी में आते हैं। दोनों ईश्वर-भक्त थे।

तिरुवल्लुवर और कबीर दोनों ने प्रेम पर अधिक जोर दिया है। मानव-जीवन प्रेम के आधार पर ही चलता है अतः प्रेम ही ईश्वर माना जाता है। तिरुवल्लुवर का कथन है कि

जिस मनुष्य के हृदय में प्रेम नहीं है वह निर्जीव है।

प्रेम मार्ग पर जो चले, देह वही सप्राण।
चर्म लपेटी अस्थि है, प्रेमहीन की मान॥ 10-80

पहली, इस ग्रंथ में क्रम संख्या और दूसरी, मूल की।

कबीर भी वही कहते हैं—

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, साँस लेत बिनु प्रान॥

प्रेम को छिपाना कठिन है चाहे वह लौकिक पक्ष में हो या

पारलौकिक, याने

माधुर्य भाव में, भक्त का भगवान के प्रति हो।

जब हृदय प्रेम से अभिभूत होता है

तब अश्रु-धारा अपने आप फूट पड़ती है।

हृदय के अंतर्गत रहस्य को जबरदस्त

प्रकट कर देने से तिरुवल्लुवर ने उसे तुच्छ कहा।

अर्गल है क्या जो रखे, प्रेमी उर में

प्यार।

घोषण करती साफ़, ही तुच्छ

नयन-जल-धार ।। 127-71

कबीर भी इसी भाव को यों व्यक्त करते हैं—

प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परगट होय

।

जो पै मुख बोलत नहीं, नैन

देत हैं रोय ।।

वियोगिनी नायिका किस तरह नायक का स्मरण सदा

सुंदर ढंग से दोनों कवियों ने यों व्यंजित किया है —

करती रहती है उसको

तेरे अंदर जब रहा, प्रियतम का आवास ।
रे दिल, उनका स्मरण कर, जावे किसके पास ।। 567-1249

प्रियतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होय विदेस ।
तन में मन में, नैन में, ताको कहा संदेस ।। कबीर ।

* *

*

आदमी जब प्रेम की मूर्ति बन जाता है तब वह क्षमाशील हो जाता है। तिरुवल्लुवर चाहते हैं कि उसे इतना क्षमाशील होना चाहिये कि बुराई करनेवालों की बदले में भलाई करनी चाहिये। यही नहीं, भलाई करते हुए यह भूल जाना चाहिये कि उसने बुरा किया और बदले में मैंने भला किया। भले मनुष्य के ऐसे व्यवहार से बुरा करनेवाला लज्जा से कुंठित हो जायगा और उसके हृदय में यह दारुण वेदना होगी कि हाय, मैंने क्या किया ? हृदय परिवर्तन करने का कितना अच्छा उपाय है !

बुरा किया तो कर भला, बुरा भला फिर भूल ।
पानी पानी हो रहा, बस उसको यह शूल ।। 645-314

अपकारी को भी अगर, किया नहीं उपकार ।
होता क्या उपयोग है, होकर गुण-आगार ।। 646-987 इनकी व्याख्या कबीर के इस दोहे से बढ़ कर क्या हो सकती है ?

जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल ।
तोको फूल ही फूल है, वाको है तिरसूल ।।

* *

* "पर उपदेश कुशल बहुतेरे' सुंदर उपदेश देनेवाले कितने होते हैं और उनकी सूक्तियाँ एक कान से सुनकर वाह वाह करके दूसरे कान से उड़ा देनेवाले कितने

होते हैं! संसार में अपने कथन के अनुसार करनेवाले बिरले ही होते हैं क्योंकि यह दुस्साध्य है। आचरण करनेवाले ही तो आचार्य हैं। इसके संबंध में तिरुवल्लुवर बताते हैं—

कहना तो सबके लिए, रहता है आसान।
करना जो जैसा कहे, है दुस्साध्य निदान

॥ 98-664

कबीर को क्रोध होता है कि
कि स्वयं आचरण नहीं कर सकते।

ये लोग व्यर्थ दूसरों को क्यों उपदेश देते हैं जब
अरे, ये लोग कौन होते हैं, इनको जाने दो!

कहता तो बहता मिला, गहता मिला न कोइ।
सो कहता बहि जान दे, जो नहिं गहता होइ॥ कबीर।

तिरुवल्लुवर फिर भी इनके
मित्रता प्राणघातक सिद्ध होगी।

संबंध में यह चेतवानी देते हैं कि ऐसे लोगों की
स्वप्न में भी इनकी मित्रता मत करो।

कहना कुछ करना अलग,

जिनकी है यह बान।
उनकी मैत्री खायगी, सपने में भी जान ॥ 99-819

* *

* साधु का वेष धारण करने से कोई साधु नहीं होता। चित्त शुद्ध होना चाहिये। जिसके मन में छल-कपट नहीं और जो पाप विचारों को स्थान नहीं देता।।।

वही साधु महात्मा है। तिरुवल्लुवर और कबीर दोनों ने मिथ्याचारियों का खंडन किया है।

साधक ने यदि तज दिया, जग-निन्दित सब काम।
उसका मुंडा या जटिल, बनना है बेकाम ॥ 630-280

केसन कहा बिगाड़िया, जो मूँडौ सौ

बार।

मनको क्यों नहिं मूंडिये, जामें विषय विकार ।। कबीर।

नहा तीर्थ में ठाट से, रखते तापस वेष ।

मिथ्याचारी हैं बहुत, हृदय शुद्ध नहिं लेश ।। 629-278

न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।

मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ।। कबीर।

साधुवेषधारी लोगों से समाज को भयंकर हानि होती है। इसलिये गीताचार्य श्रीकृष्ण और पूज्यपाद श्री आदि शंकराचार्य दोनों ने भी इनको मूढ कह कर इनकी कड़ी निन्दा की है। गीता का श्लोक है—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा

स्मरन् ।

इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ।।

कर्मेन्द्रियों को वश में रखकर मन में इन्द्रियों से होनेवाले भोगों का विचार रखनेवाला मूढ मिथ्याचारी कहलाता है ।

श्री शंकराचार्य ने कहा है कि जटाधारी होना, सिर का मुंडन करना या बाल उखाड़ देना, गेरुआ वस्त्र पहनना आदि कितने प्रकार के वेष ये मूढ पेट भरने के लिये धारण करते हैं और आँखें रखते हुए भी अंधे हैं ।

जटिलो मुंडी लुंचित केशः काषायाम्बर बहुकृत वेषः ।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढो ह्युदरनिमित्तं बहुकृत वेषः ।।

*   *   *

साधारण मनुष्य सोचता है पूजा-पाठ, धर्म-कर्म, आत्मविचार आदि करना बूढ़ों का काम है । गृहस्थी की झंझटों से मुक्त होने के बाद भगवद्भजन;

तीर्थयात्रा आदि कर लेंगे । अभी जल्दी क्या है ? ऐसे लोगों

को उद्बोधन करते
हुए कबीर कहते हैं—

काल करै सो आज कर, आज करै
सो अब्ब ।

पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा
कब्ब ।।

प्रसिद्ध तमिल काव्य 'शिलप्पधिकारम' के अंत में

उसके रचयिता संत
इलंगो अडिकल उपदेश देते हैं—

टिक नहीं सकती जवानी स्थिर नहीं धन
देह भी

प्राप्त जीवन के दिनों को काट कभी न
व्यर्थ ही

धर्म जो कुछ कर सकें सब पूर्ण
कर लें आज ही ।

(लेखक का पद्यानुवाद । छंद-गीतिका)

जीवन इतना क्षणिक है कि कोई नहीं जानता कि वह
अगले क्षण जीवित

रहेगा या नहीं। इसी अनित्यता के भय से विवेकी पुरुष धर्म-कर्म को नहीं टाल देते। अपना जो कर्तव्य है उसे अविलंब करते हैं और उसपर आग्रह करते हैं।

तिरुवल्लुवर कहते हैं—

अगले क्षण क्या जी रहें, इसका है नहिं बोध।
चिंतन कोटि न, अनगिनत, करते रहें अबोध ॥ 656-337

'बाद करें मरते समय', सोच न यों कर धर्म।
जान जाय जब छोड़ तन, चिर संगी है धर्म ॥ 605-36

* * *

वही जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है जो मधुर भाषण करता है।

अन्य सब गुणों के रखते हुए भी यदि आदमी

में मीठी बोली बोलने का स्वभाव नहीं

है तो वह जीवन-संघर्ष में बुरी तरह हार जाता है। 'जिह्वा मे मधुमत्तमा',

उपनिषद् में यों प्रार्थना है कि मेरी वाणी अत्यंत मधुर हो। यजुर्वेद में यह है— 'मधु मनिष्ये, मधु जनिष्ये, मधु वक्ष्यामि, मधु वदिष्यामि'—याने मधुर विचार करूँ, मधुर कर्म करूं, मधुर वचन बोलूं। इस प्रकार वेद-वेदान्त में मृदु-भाषी होने की

आवश्यकता पर जोर दिया गया

है। इस सरल उपाय को काम में न लाकर अपनी

XX

जीवन को दुःखमय बनानेवाले मूर्ख पर तरस खाकर तिरुवल्लुवर अपनी वेदना प्रकट

करते हैं—

रहते सुमधुर वचन के, कटु कहने की बान।

यों ही पक्का छोड़ फल, कच्चा ग्रहण समान॥ 15-100

मधुर वचन में इतनी शक्ति है कि वह न केवल

दुखी को सुखी बनाता है
परंतु बीमार की बीमारी को भी दूर कर देता है।
उलटे कटु वचन तीर से भी
भयंकर है। जबकि तीर सीधे शरीर के एक अंग
मात्र को छेद कर जाता है
कटुवचन तो कान के अंदर से टेढे टेढे चल कर शरीर के अंग
अंग को चुभो देता है।

मधुर वचन है औषधी, कटुक वचन है
तीर।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै
सकल सरीर ।। कबीर।

* * *

सभी धर्मावलंबी यह मानते हैं कि तृष्णा, लोभ या
सांसारिक सुख-भोग की
इच्छा ही दुःख की जड़ है। चाह से मुक्त होने
पर दुःख-निवृत्ति हो जाती है।
वही मुक्ति या मोक्ष साम्राज्य है।
तिरुवल्लुवर चाह से मुक्त होने के लिये सत्य
याने भगवान पर आसक्त होने का उपाय बताते हैं।
उसके फलस्वरूप अन्य सब

आसक्तियाँ दूर हो जायेंगी।

चाह गई तो है वही, पवित्रता या मुक्ति।

करो सत्य की चाह तो, होगी चाह विमुक्ति ।। *691-364*

तिरुवल्लुवर के शब्दों में शब्द मिलाकर कबीर घोषित करते हैं—

चाह गई चिंता मिटी, मनुवा बेपरवाह।

जिनको कछू न चाहिये, वोही शाहंशाह ।।

सोलहवीं शताब्दी में जब गोस्वामी तुलसीदास का जन्म हुआ तब मुगलों क

साम्राज्य स्थापित हो चुका था और हिन्दू जाति निराशा के अंधकार में पड़ी हुई थी।

तुलसीदास ने राम-भक्ति के दिव्य आलोक से उस अंधकार को दूर

तुलसीदास :
करके हिन्दुओं को नवजीवन प्रदान किया।
संस्कृत में प्रकांड
विद्वान होने पर भी उन्होंने
जनता की भाषा में रामचरितमानस
की रचना की जिससे जनता उससे लाभ उठा सके।
रामचरितमानस के प्रारंभ में
xxi

अपनी विनयशीलता प्रकट करते हुए वे सज्जनों से अपनी धृष्टता के लिये क्षमा- याचना करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि प्रौढ रचना न होने पर भी बालक का वचन मानकर उसे सुनें। क्या माता-पिता अपने बालक की तोतली बोली सुन कर मुदित नहीं होते?

छमिहहिं सज्जन मोरि
ढिठाई।
सुनिहहिं बालवचन मन
लाई।
जौं बालक कह तोतरि बाता
।

सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता
।।

संतान-प्रेम की उत्कृष्टता का वर्णन करते हुए तिरुवल्लुवर कहते हैं कि मुरली या वीणा का नाद सुनकर वे ही उसको मधुर कहेंगे जिन्होंने अपनी संतान की तोतली बोली न सुनी।

मुरली-नाद मधुर कहें, सुमधुर
वीणा-गान ।
तुतलाना संतान का, जो न सुना निज
कान ।। 117-66

* *
*

रामचरितमानस के उपरोक्त प्रसंग में तुलसीदास दुर्जनों की चुटकी लेते हुए
कहते हैं कि मैं सज्जन और दुर्जन दोनों को प्रणाम करता हूँ। दोनों दुख देनेवाले
हैं लेकिन एक भेद अवश्य है।
जबकि सज्जन से अलग होने पर दुख होता है, दुर्जन
से मिलने पर दुख होता है।

बंदउँ संत असज्जन चरना ।
दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं ।
मिलत एक दुख दारुन देहीं ।।

इसी भाव को तिरुवल्लुवर दो कुरलों व्यक्त करते हैं—

हर्षप्रद होता मिलन,
चिंताजनक वियोग ।
विद्वज्जन का धर्म है, ऐसा गुण संयोग ।। 217-394

पीड़ा तो देती नहीं, जब होती है भंग ।
सो मूढों की मित्रता, है अति मधुर प्रसंग ।। 218-839

* * *

भारतीय समाज में साधारणतः स्त्रियों के लिये पतिव्रता होना जितना

आवश्यक माना जाता है उतना
पुरुषों के लिये पत्नीव्रत होना नहीं। इसी कारण से

भारतीय साहित्य में भी पर-स्त्री के साथ अनुचित
व्यवहार करनेवाले लंपट का

खंडन करना तथा उसके कलंकित चरित्र पर नाक-भौंक
सिकोड़ना तो दूर रहा परंतु

खंडिता, परोढा, अन्यसंभोगदुःखिता आदि नायिकाओं का
वर्णन करने की प्रथा चल

पड़ी।
आदिकवि श्री वालमीकि की अमर कृति का महत्व इसी में है कि
'सीतायाः

चरितम् महत्' के साथ ही पत्नीव्रत रामचन्द्रजी का
आदर्श चरित्र भी उसमें है।

रावण का पतन उसके एक मात्र
दोष पर-पत्नी-आसक्ति से हुआ, यह दिखा कर

आदिकवि ने एक महान आदर्श को समाज के सामने रखा
है। उसी भारतीय,

ऋषि-परंपरा में आये हुए महानुभाव इस आदर्श को कभी न

भूले।

पर-नारी नहिं ताकना, है धीरता
महान।

धर्म मात्र नहिं संत का,

सदाचरण भी जान ।। 151-148

यह तिरुवल्लुवर की सूक्ति है। पर-नारी की ओर न देखनेवाला महान धीर

है। उसकी धीरता युद्ध-वीर दान-वीर और दया-वीर से भी बढ़कर है। इसलिये उसे 'महान' का विशेषण लगा दिया। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में राम के मुंह से इस सूक्ति की व्याख्या करा दी। वाटिका-प्रसंग में राम

लक्ष्मण से कहते हैं—'भाई युद्धक्षेत्र में पीठ न दिखानेवाले, परस्त्री को मन या आँख

से न देखनेवाले तथा याचक को 'नहीं' न कहनेवाले संसार में थोड़े ही मिलते हैं।'

जिन्हकै लहहिं न रिपु रन पीठी ।

नहिं लावहिं परतिय मनु डीठी ।

मंगन लहहिं जिन्हकै नाहीं ।

ते नरवर थोरे जग

माहीं ।।

* * *

लौकिक समस्याओं का सामना करते समय हमें क्या-क्या उपाय ग्रहण करना चाहिये, इसके संबंध में संत जनों के उपदेशों में कभी-कभी अतिशय समानता मिलती है। तिरुवल्लुवर और तुलसीदास के उपदेशों में से एक उदाहरण यह है—

xxiii

प्रतिकूल अवस्था में सबल शत्रु का सामना करना पड़े तो शत्रु-भावना को

प्रकट न करके शत्रु को सिर पर ढोना चाहिये।

इस प्रकार संभालना कि उसे यह शंका न हो कि तुम

उसको नष्ट करने पर तुले हो। जब शत्रु की बुरी अवस्था

याने तुम्हारी अनुकूल अवस्था होती है तब झटपट

उसे सिर के बल मार कर उसका

अंत कर देना चाहिये।

यह तिरुवल्लुवर का बताया हुआ है—

रिपु को असमय देख कर, सिर पर ढो संभाल।

सिर के बल गिर वह मिटे, आते अंतिम काल ।। 337-488

रिपु को सिर पर ढोना! क्या यह संभव है? हाँ, अक्षरशः संभव है।

तुलसीदास एक सुंदर उपमा देकर इसके भाव को समझाते हैं।

पानी बड़ा चतुर है।

वह नाव रूपी शत्रु को सिर पर ढोता रहता है। जब नाव की बुरी दशा होती है तथा वह डाँवाडोल होने लगती है तब पानी झटपट चारों दिशाओं से घेर कर उसे डुबो देता है।

सत्रु सयाने सलिल ज्यों, राख सीस रिपु नाव।
बूड़त लखि पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाव ।।

तुलसीदास के
भारतीय

समकालीन खानखाना अब्दुर्रहीम मुसलमान होने पर भी संस्कृति में पगे हुए थे और उनके दोहे उनके उदार हृदय के

रहीम : परिचायक हैं।

स्वभाव से वे बड़े दानी थे। याचकों की दुर्दशा

देखकर उनका हृदय फट

जाता था और लोभी को वे भिखमंगों से भी

गया-बीता समझते थे। उसका कहना है—

रहिमन वे

नर मर चुके, जे कहुँ मांगन जाहिं।

उनसे पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥

रहीम का जैसा विचार दो हजार वर्षों के पहले विरचित

तिरुक्कुरल में उसी

ढंग से व्यंजित देखकर हमें आश्चर्य होता है।

'नहीं' शब्द सुन जायगी,

याचक जन की जान।

गोपन करते मनुज के, कहाँ छिपेंगे प्राण॥ 479-1070

* * *

मित्रों को परखने के संबंध में तिरुवल्लुवर और रहीम दोनों का विचार

कितना मिलता है, यह एक दोहे से साफ़ प्रकट होता है। दोनों मानते हैं कि

आपत्तियाँ मित्र की परीक्षा लेने के लिये अच्छे साधन हैं। मित्र रूपी खेत को

मापने का वे अच्छा मान-दंड हैं इसलिये उनका स्वागत करना चाहिये।

तिरुवल्लुवर का कथन है—

होने पर भी विपद के, बड़ा लाभ है एक।

मित्र-खेत सब मापता, मान-दंड वह एक ।। 228-796

इस विचार से सहमत होने पर भी रहीम ने उसको एक शर्त लगा दी।

विपत्ति हो, लेकिन थोड़े दिनों के लिए हो। संकट काल में यह मालूम हो

जायगा कि कौन हितैषी है और कौन नहीं। बस, उसके

बाद संकट दूर हो जाय।

रहिमन विपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।

हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय।।

*　　　　*　　　　*

प्रेम के प्रसंग में कबीर और तिरुवल्लुवर का भाव-साम्य जो देखा गया वह रहीम के एक दोहे में भी पाया जाता है।

अर्गल है क्या जो रखे, प्रेमी उर में प्यार।

घोषण करती साफ़ ही, तुच्छ नयन-जल-धार।। 121-71

रहिमन अंसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ।

जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ।।

वियोग अवस्था में हृदय के दुःख को आँसू प्रकट

कर देते हैं। इसका
उदाहरण जो रहीम ने दिया है वह हास्यजनक है।
नौकर को घर से निकालने
पर क्या वह घर के रहस्य को बता न देगा? प्रेम या
प्रीति को छिपाना संभव
नहीं। रहीम ने उसके साथ और चीजों को जोड़कर
अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा
का परिचय दिया है।

खैर, खून, खाँसी, खुशी,
वैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान।।

* * *

XXV

एक साधारण सत्य की कल्पना के सहारे कैसी सुंदर
अभिव्यंजना हुई है,
इसका उदाहरण रहीम के इस दोहे में मिलता है—

अमिअ हलाहल मद भरे, श्वेत
श्याम रतनार।

जियत मरत झुकि झुकि परत, जिहि चितवत इक बार ।।

आंख के तीन रंग सफ़ेद, काला और लाल क्रमशः अमृत, विष और मदिरा के द्योतक हैं। वैसे तो ये सत्व, तम और रजोगुण के भी व्यंजक हैं। दृष्टिपात होने पर देखनेवाले व्यक्ति के गुण के अनुसार दृष्टि पड़ी हुई व्यक्ति पर प्रभाव हो जाता है।

तिरुवल्लुवर ने नायिका की दृष्टि की इस शक्ति का कराया है। वर्णन नायक के द्वारा

क्या यम है या आँख है, या है मृगी सुरंग ।
इस मुग्धा की दृष्टि में, है तीनों का ढंग ।। 502-1085

यम काले रंग का, विष का द्योतक है। हिन्दी में आंख का अर्थ नेत्र के

साथ साथ दयापूर्णता भी है।
तमिल में भी ऐसा अर्थ है। सफ़ेद रंग इसका
चिह्न है। मृगी चंचलता और लाल रंग व्यंजित करती
है। प्रथम मिलन में
नायिका पहले क्रुद्ध दृष्टि से देखती है, मानों यम है। फिर
उसका दयार्द्र होना
नायक को नवजीवन प्रदान करता है। उसके बाद उसकी
प्रेम-भरी चंचल दृष्टि
नायक को मस्त कर देती है।
तिरुवल्लुवर के इस 'कुरल' की व्याख्या रहिम के
दोहे से मिला कर करने पर भाव-गंभीरता कितनी स्पष्ट हो
पाठक जान सकेंगे।
जाती है यह सहृदय

सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि बिहारी

अपनी एक मात्र कृति 'बिहारी
सतसई' से, जो एक मात्र छंद दोहे में है,
हिन्दी साहित्य-जगत में अमर स्थान पा

गये जैसे तिरुवल्लुवर तिरुक्कुरल से तमिल साहित्य-जगत में। दोनों
बिहारी की कृतियाँ मुक्तक काव्य हैं।
फिर भी दोनों में भेद यह है कि
'बिहारी सतसई' श्रृंगार-प्रधान है यद्यपि उसमें यत्र तत्र नीति और
भक्ति संबंधी कुछ दोहे मिलते हैं। तिरुक्कुरल में तो मानव-जीवन के सभी
पहलुओं पर विचार किया गया है। दोनों कवियों के श्रृंगार के दोहों में से कुछ
उदाहरण यहाँ दिये गये हैं जिनमें अतिशय भाव-साम्य है।

iv

XXVI

गुरुजनों के बीच नायक और नायिका का मिलन होता है। खुल कर बातें करना कुल-मर्यादा के विरुद्ध है। फिर भी दोनों बातें कर ही लेते हैं, मुंह से नहीं; आँखों से। तिरुवल्लुवर कहते हैं कि ऐसी हालत में जीभ का

प्रयोजन नहीं ।

नयन नयन मिल देखते, यदि

होता है योग ।

वचनों के मुँह से कहे, है नहिं कुछ

उपयोग ।। 512-1100

इस प्रसंग में बिहारी नाटक का एक दृश्य उपस्थित करते हैं ।

कहत नटत रीझत

खिझत, मिलत खिलत लजियात ।

भरे भवन में करत हैं, नैनन‌ु ही सब

बात ।।

* *

*

प्रियतम सामने न रहे तो उसको देखने की उत्कंठा

रहती है । सामने आने

पर लज्जा उसको देखने नहीं देती ।

प्रियतमा खीझ उठती है—

अरे सुदिल, तज काम

को, या लज्जा को त्याग।

मैं तो सह सकती नहीं, इन दोनों की आग ।। 566-1247

ये बेचारे नेत्र अवसर आने पर नहीं देखते। फिर व्याकुल होते हैं।

इन दुखिया अँखियान कूँ, सुख सिरज्यौ ही नाहिं।
देखै बनै न देखतै, अनदेखै अकुलाहिं ।।

बिहारी।

मानिनी नायिका यह संकल्प कर चुकी थी कि प्रियतम के आने पर वह

रूठकर रह जायगी। लेकिन प्रियतम को

देखते ही वह संकल्प काफूर हो जाता है।

चली गई मैं रूठने, किंतु हृदय को देख ।

वह प्रवृत्त है मिलन हित, गले

लगी हो एक ।। 568-1259

अग्निदत्त मज्जा यथा, जिनका दिल द्रवमान ।

उनको प्रिय के पास रह, क्या संभव

है मान ।। 569-1260

मान करने का गर्व क्षणिक रहा । व्रजराज

को देखते ही वह छूट गया ।

xxvli

मोहि कौ छुटि मान गौ, देखत ही व्रजराज ।

रही घरिक लौं मान सी, मान करे की लाज ।। बिहारी ।

* *
*

वियोगिनी नायिका को स्वप्न में संयोग का आनन्द होता है पर निगोड़ी नींद झट छूट जाती है ।

सोवत सपने स्याम घन, हिलिमिलि हरत वियोग ।
तब ही टरि कितहूँ गई, नींदौ नींदन जोग ।। बिहारी ।

तिरुक्कुरल में नायिका सोचती है—

यदि न रहे यह जागरण, तो मेरे प्रिय नाथ ।
जो आते हैं स्वप्न में, छोड़ न जावें

साथ ।। 549-1216

जागने पर प्रियतम भाग तो गये पर और कहीं नहीं, प्रियतमा के हृदय के अंदर! सपने में आंखों में रहनेवाले प्रियतम नींद के खुलने पर हृदय में वास करने लगते हैं । शृंगार की कैसी उदात्त भावना है!

गले लगाते नींद में, पर जब पड़ती जाग ।
तब दिल के अंदर सुजन, झट जाते हैं भाग ।। 551-1218

कविवर देव ने जो हिन्दी साहित्य में बिहारी की श्रेणी में आते हैं एक कवित्त में स्वप्न-सुख से वंचित नायिका की व्यथा का हृदयग्राही चित्रण किया है ।

वर्षा काल के आरंभ में जब काले बादल गरजते हुए पानी की
देव पतली बूंदें छिड़क
रहे थे प्रियतम घनश्याम ने झूलने के लिए

बुलाया। बड़े हर्ष के साथ नायिका
उठना ही चाहती थी।
पर—'चाहत उठ्योई उठ गई सो निगोड़ी नींद'।

कवित्त की पिछली पंक्तियाँ पढ़ते समय ही ज्ञात
होता है कि यह स्वप्न-
मिलन का वर्णन है
। पाठक रस-विभोर हो जाता है। "मैं उठना ही चाहती
थी पर उसके पहले नींद उठ गई। मैं जग गई पर मेरा
भाग्य सो गया। पानी
की बूँदें बाहर
न दिखाई पड़ीं पर मेरी आँखों में आँसू के रूप में
छा गईं"।

xxviii

नायिका का यह विलाप किस सहृदय के हृदय को न हिला देगा ?
विप्रलंभ श्रृंगार
का पावन चित्र अंकित करनेवाला वह कवित्त यह है—

झहरि झहरि झीनी, बूँद हैं
परति मानों,

घहरि घहरि घटा, घेरी है
गगन में ।
आनी कह्यो स्याम मोसों, ' चलो
झूलिबे को आज '
फूली न समाई भई, ऐसी
है मगन मैं ।
चाहत उठचोई उठ, गई सो
निगोड़ी नींद,
सोइ गये भाग मेरे, जागि वा
जगन में ।
आँख खोलि देखौं तो न,
घन है न घन स्याम
वेई छाई बूंदें मेरे, आँसू ह्वै दृगन
में ।। देव ।

वियोगिनी नायिका को स्वप्न में संयोग-सुख मिलता होगा । उसे भंग न होने देना चाहिये । इस विचार से महाकवि कालिदास

'मेघसंदेश' में उसके नायक के
द्वारा मेघ को यह उपदेश दिलाते हैं—

तस्मिन्काले जलद यदि सा

लब्धनिद्रासुखास्या—

-दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं

सहस्व ।

मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचिसद्यः

कण्ठच्युत भुजलताग्रन्थि

गाढोपगूढम् ।। कालिदास ।

श्लोक का भावार्थ यह है कि अरे मेघ!
जब तुम मेरी प्रियतमा के यहाँ पहुँचोगे
तब तुम उसको सोती हुई पाओगे तो गरजना छोड़कर ज़रा
ठहरो । किसी तरह
मुझे स्वप्न में पाने के बाद मेरे आलिंगन में वह पड़ी होगी ।
उससे वह झट न छूट
जाय ।

इसीलिये तो 'कुरल' की नायिका ने सोचा—

यदि न रहे या जागरण, तो
मेरे प्रिय नाथ।
जो आते हैं स्वप्न में, छोड़ न जावें
साथ ।। 549-1216

* * *

xxix

मादकता से आये तुम,
संज्ञा से चले गये थे।
हम व्याकुल पड़े विलखते,
थे उतरे हुए नशे से ।।

बाबू जयशंकर प्रसाद के सुंदर काव्य 'आँसू' से यह

उद्धरण है। मूर्च्छित अवस्था में नायक के दर्शन हुए। होश आने पर चले गये तो नायिका का हृदय
तड़प उठता है। वियोग की अवस्था में जागरण अभिशाप है।
प्रसाद स्वप्न का सुख भी वह न होने देता। इसीलिये तो 'कुरल' की
नायिका कह उठती है कि 'यदि न रहे यह जागरण तो मेरे प्रिय नाथ
जो आते हैं स्वप्न में छोड़ न जावें साथ'।

* * *

श्रृंगार में असंभव भी संभव हो जाता है। तिरुक्कुरल में

नायक अपने सखा से एक आश्चर्य के संबंध में बात करता है। उसकी प्रियतमा के पास आग है। उसके पास जाने पर वह ठंडी लगती है! उससे हट जाने पर वह जलाती है!

हटने पर देती जला, निकट गया तो शीत।
आग कहाँ से पा गई, बाला यह, विपरीत ।। 513-1104

हाँ, प्रेम की आग का यह विपरीत गुण है।

'प्रसाद' के 'आँसू' में इस विरोधाभास की कितनी सुन्दर अभिव्यंजना हुई है—

शीतल ज्वाला जलती है,
ईंधन होता दृग जल का।
यह व्यर्थ साँस चल चलकर,
करती है काम अनिल का ॥

दांपत्य जीवन में प्रणय-कलह उतना आवश्यक है जितना भोजन में नमक है पर इसमें सावधान रहना चाहिए कि वह निर्धारित सीमा के अंदर रहे। जिस

प्रकार नमक के बिना भोजन फ़ीका रहता है या नमक के

मैथिलीशरण गुप्त आधिक्य से भोजन खाने

योग्य नहीं रहता उसी प्रकार

प्रणय-कलह के बिना दांपत्य-जीवन नीरस हो जाता है

XXX

और उसकी सीमा का उल्लंघन करने से दांपत्य जीवन नष्ट हो जाता है। इसी

आशय का एक 'कुरल' है—

ज्यों भोजन में नमक हो, प्रणय कलह त्यों जान ।
ज़रा बढ़ाओ तो उसे, ज़्यादा नमक समान ।। 588-1302

संयोग श्रृंगार में अपनी काव्य-कुशलता दिखाने के लिये प्रणय-कलह कवियों का एक प्रधान अवलंबन रहा है । हिन्दी के श्रेष्ठ कवि मैथिलीशरण गुप्तजी अपनी उत्कृष्ट कृति साकेत में लक्ष्मण और उर्मिला के सरस संवाद में प्रणय-कलह का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । साधारण कलह और प्रणय-कलह दोनों में एक मुख्य भेद है । प्रणय कलह में जिसकी हार होती है उसीको अधिक हर्ष होता है, याने वास्तविक जीत उसीकी है । साधारण कलह में यह संभव नहीं । गुप्तजी का कथन है—

हार जाते पति कभी पत्नी कभी,
किंतु वे होते अधिक हर्षित तभी ।

प्रेमियों का प्रेम गीतातीत है,
हार में जिसमें परस्पर जीत है ।। साकेत
।

तिरुवल्लुवर भी वही कहते हैं—

प्रणय-कलह में जो विजित, उसे
रहा जय योग ।
वह तो जाना जायगा, जब होगा
संयोग ।। 598-1327

संसार की अनित्यता पर तिरुवल्लुवर ने चेतावनी दी है । उस प्रसंग में एक 'कुरल' है—

कल जो था, बस, आज तो,
प्राप्त किया पंचत्व ।
पाया है संसार ने, ऐसा बड़ा
महत्व ।। 655-336

किसी की मृत्यु अचानक हुई तो कोई बोल उठता है—'अरे, कल मैंने उसे देखा, अच्छा था। आज मर गया! तिरुवल्लुवर बताते हैं कि

महादेवी वर्मा

इसी अनित्यता में संसार का महत्व है। यह भी क्या महत्व है ?
साधारणतः इसका भाव यही समझा जाता है कि यह निन्दा-
स्तुति है।

xxxi

कवयित्री महादेवी वर्मा के अनुसार यह निन्दा-स्तुति नहीं। परंतु वास्तविक स्तुति है। संसार की अनित्यता में ही उसका महत्व है। नव जीवन की उत्पत्ति
तथा स्थिति,
इसीमें संसार

फिर उसका मिटना तथा फिर उत्पन्न होना, ऐसा क्रम जो चलता है
का सार है। मरण नहीं तो जन्म कैसे ? वेदना नहीं तो सुख क्या

चीज़ है कौन जाने ? जीवन
और भारस्वरूप हो जाएगा ?

परिवर्तनशील नहीं तो वह कितना भयंकर; निस्सार
कवयित्री महादेवी वर्मा प्रश्न करती है कि क्या अमर
लोक का जीवन भी कोई जीवन है ? उसे
मर्त्यलोक ही चाहिये जिसमें मिटने का

और फिर नव जीवन पाने का आनन्द है।

इस आशय की उनकी कविता है—

ऐसा तेरा लोक, वेदना नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,

जलना जाना नहीं, नहीं, जिसने जाना मिटने का स्वाद।

क्या अमरों का लोक मिलेगा,
तेरी करुणा का उपहार?

रहने दे हे देव! अरे, यह मेरे मिटने का अधिकार!

—महादेवी वर्मा

तिरुवल्लुवर ने ठीक ही कहा—

'पाया है संसार ने,
ऐसा बड़ा महत्व।' 655-336

गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' : मनुष्य उसके मित्र के द्वारा पहचाना जा सकता है। सत्संग से उसका जीवन निखर उठता है। उत्तम मित्र का जहाँ अभाव रहता है वहाँ सद्ग्रंथ उसकी पूर्ति करते हैं। सज्जनों की मैत्री सदा आनंददायक है। कभी उससे दिल ऊब नहीं उठता। उसी प्रकार सद्ग्रंथों का अध्ययन बार बार करो, फिर भी उससे नव नव उन्मेष ही होता है। इस आशय के 'कुरल' के भाव को गिरिधर शर्मा

'नवरत्न' अपनी कविता में व्यक्त करते हैं।

मैं जो नया ग्रंथ विलोकता

हूँ,

भाता मुझे सो नव मित्र सा है।
देखूँ उसे मैं नित

बार-बार,

मानो मिला मित्र मुझे पुराना ।।
'नवरत्न'।

इस आशय का 'कुरल' यह है—

करते करते अध्ययन, अधिक सुखद ज्यों

ग्रथ ।

परिचय बढ़ बढ़ सुजन की, मैत्री दे आनंद ।।
220-783

क्रांतिकारी कवि 'नवीन' का हृदय ग़रीब आदमी की बुरी दशा देखकर

जल उठता है ।
उसको बड़ी वेदना होती है कि मानव जो ईश्वर की उत्तम सृष्टि

माना जाता है भूख से पीड़ित होने पर अपना मान

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

और गौरव पैरों तले कुचल देता है । पेट भरने के

लिये वह भीख मांगता है । यही नहीं जूठा पत्तल

तक उठाकर चाटता है ।
इस कार्य में कुत्तों से भी होड़ लगाने में उसको लज्जा

नहीं आती ।
इस दशा को सुधारने में अपनी असमर्थता के कारण कवि सृष्टि-कर्ता

पर आग-बबूला हो जाता है और गला दबा कर उसका अंत कर देने की सोचता है ।

सारी दुनिया को ही वह जला कर भस्म कर देना चाहता है
।

लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने
देखा नर को
उस दिन सोचा
यह भी सोचा
क्यों न आग लगा दूँ दुनिया भर को
क्यो न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं
जगपति का । 'नवीन' ।

इस प्रसंग में तमिल भाषा के महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की
वाणी भी आग
उगलती है—

खाना न मिले एक व्यक्ति
को
तो मिटा दें हम जगत को
। 'भारती' ।

आधुनिक काल में क्रांतिवादी कवियों के मुंह से ऐसे ज्वलंत विप्लव-गायन के

स्वर फूट पड़ेंगे तो उसमें आश्चर्य करने की बात नहीं है। लेकिन दो हज़ार वर्ष

पूर्व के संत कवि की यह घोषणा सुनकर हमें अवश्य आश्चर्य होता है—

यदि विधि की करतार ने, भीख मांग नर खाय।

मारा मारा फिर वही, नष्ट-भ्रष्ट हो जाय॥ 473-1062

xxxiii

उस महात्मा के हृदय में दीन-दुखियों के प्रति इतनी सहानुभूति थी कि ईश्वर॰ निंदा करने तक को वे विवश हुए। जगपति का गला घोंट कर उसका अंत कर

देने से उसके दुःख का भी अंत हो जायगा। यह दंड काफ़ी नहीं है। इसलिये तिरुवल्लुवर ने सोचा कि जगपति भी भूख मिटाने के लिये भीख मांगते मारा मारा फिरे जिससे भिखमंगों का कष्ट उसकी समक्ष में आए और फिर वह तिल तिल करके नष्ट हो जाय। कैसा नीतिपूर्ण दंड है!

याचना करना किसी भी हालत में तिरुवल्लुवर को मान्य नहीं था। फिर भी वे स्वयं याचना करते हैं। वह भी याचकों से याचना करते हैं!

याचक सब से याचना, यही कि जो भर स्वाँग।
याचन करने पर न दें, उनसे कभी न मांग।। 478-1067

एक मात्र इस 'कुरल' में तिरुवल्लुवर अपनी ओर से यह प्रार्थना करते हैं। अपने यहाँ धन रखते हुए उसे छिपा कर लोभी स्वयं संकटग्रस्त होने का वेष धारण करता है और याचक को खाली हाथ लौटा देता है। याचकों से तिरुवल्लुवर की प्रार्थना है कि ऐसे लोभियों के सामने हाथ न पसारना चाहिये। तिरुवल्लुवर की

गरीबों के प्रति सहानुभूति तथा मानव-सम्मान पर आग्रह हृदयस्पर्शी हैं।

इस लेख में तिरुवल्लुवर और हिन्दी के कवियों की भाव-साम्यता का कुछ
उदाहरण देना मेरा उद्देश्य था। फिर भी महाकवि कालिदास और उपनिषद से
भी उदाहरण दे चुका हूँ। और कुछ उदाहरण संस्कृत से देकर मैं इस प्रकरण
को समाप्त करना चाहता हूँ।

श्रीमद् वाल्मीकि रामायण में रामचन्द्रजी अपनी माता को पातिव्रत्य धर्म की
महिमा बताते हैं। माता कौशल्या राम के
श्रीमद् वाल्मीकि रामायण साथ स्वयं वन जाने पर आग्रह करती हैं।
तब राम माता को यों समझाते हैं—

भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम्।
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देव

पूजनात् ।।

'देवों की पूजा करके नमस्कार करने से ही स्त्रियों को उत्तम स्वर्ग

न करने पर भी पति की सेवा-शुश्रूषा प्राप्त होगा'। इसका तात्पर्य यह नहीं है

v

कि देवों की पूजा न करनी चाहिये। तिरुक्कुरल में इस आशय का एक

कुरल है।

पूजे सती न देव को, पूज जगे निज कंत।

उसके कहने पर 'बरस', बरसे मेघ तुरंत ।। 109-55

पातिव्रत्य की महिमा स्पष्ट करने के लिये इस सूक्ति से बढ़ कर क्या हो

सकता है? पतिव्रता नारी को जाग्रत अवस्था में सदा पति का ध्यान रहता है।

सो जाने के बाद फिर जब वह जागती है, जागते जागते पति का पावन स्मरण

ही पहले आता है।
या यों कह सकते हैं कि सुप्त अवस्था समाप्त होने पर जाग्रत

स्थिति का ज्ञान
होने के पहले वह पति की मानसिक पूजा कर लेती है। थोड़े

शब्दों में तिरुवल्लुवर कह गये 'पूज जगे निज कंत' याने पति की पूजा करके वह

जागती है। अत्युक्ति होने पर
भी कैसी पवित्र भावना है। ऐसी पतिव्रता

की इतनी दैवी शक्ति है कि वह जो चाहे होगा ही?
'पूजे सती न देव को'—

इसका विपरीत अर्थ लगानेवाले यों इसका अर्थ बताते हैं कि सती नारी देवों

की पूजा न करेगी। ऐसा अर्थ लगाना संत-कवि पर अन्याय करना है।

वाल्मीकि और तिरुवल्लुवर दोनों का भाव यही है

कि पतिव्रता चाहे देव-पूजा

करने से चूक जाय पर पति-पूजा करने से वह न चूकेगी
।

* * *

तिरुवल्लुवर कृतघ्नता को महा पाप मानते हैं। जबकि और पापों का

प्रायश्चित्त हो सकता है कृतघ्नता का प्रायश्चित्त ही नहीं।

जो भी पातक नर करे, संभव है उद्धार।

पर है नहीं कृतघ्न का, संभव ही निस्तार।। 32-110

वालि का वध होने के बाद सुग्रीव का राज्याभिषेक हो गया। फिर वह

सुख-भोग में रम गया।
सीता की खोज के प्रयत्न में उसकी असावधानी सी मालूम

हुई। उस प्रसंग का यह श्लोक है—

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च
गोघ्ने भग्नव्रते तथा।

निष्कृतिः विहिता सद्भिः कृतघ्ने

नास्ति निष्कृतिः ।।

ब्रह्महत्या, मदिरापान, गोहत्या, व्रत-भंग करना; आदि पापों का प्रायश्चित्त

बड़ों ने बताया है। लेकिन कृतघ्नता का

प्रायश्चित्त ही नहीं है।

XXXV

'स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। ततो मे
'इन्द्र मुझे सद्बुद्धि दे। उसके बाद धनदे

श्रियं आवह।' यह उपनिषद वाक्य है।
।' यही प्रार्थना है। श्री शंकराचार्य

ने इसका कारण कहा—' अमेधसो ही श्रीः अनर्थायैवेति।'
तैत्तिरीय उपनिषद। याने मूर्ख के पास धन-संपत्ति हो तो वह अनर्थ की जड़

बन जायगी। समाज में आर्थिक विषमताओं का एक

कारण मूर्ख लोगों के पास धन का जम जाना है। सद्बुद्धि रखनेवाले अपरिग्रह का तत्व जानते हैं।
उनके यहाँ धन की वृद्धि हो तो उसका उचित अंश लोकोपकार के काम में व्यय करेंगे।
इसके विपरीत मूर्ख धनी हो जायगा तो वह अपने धन का दुरुपयोग करके समाज में भ्रष्टाचार पनपने की सहायता करेगा। इसलिये उपनिषद
में मेधा के बाद धन प्रदान करने की प्रार्थना की गई। इसी भाव को यह 'कुरल' व्यक्त करता है—

शिक्षित के दारिद्र्य से, करती अधिक विपत्ति।
मूर्ख जनों के पास जो, जमी हुई संपत्ति॥ 499-408

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए यह भी प्रकट कर देते हैं कि वे साधारण मनुष्य नहीं हैं।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूत महेश्वरम् ।। गीता ।

'मनुष्य शरीर में मुझे देखकर मेरे परमात्म-भाव और ईश्वरीय गुणों को मूर्ख लोग नहीं जानते और वे मेरी अवहेलना करते हैं।' फिर अपने विश्वरूप को
दिखाने के बाद ज्ञान-विज्ञान की बहुत सी बातें श्रीकृष्ण ने कहीं। अंत में भगवान ने जो कहा वह हमें आश्चर्य में डालता है।'
'अर्जुन, मुझे ईश्वर समझ कर मेरी बात मत मानो।' लेकिन—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।। गीता ।

'इस प्रकार मैंने तुमको परम रहस्य की जो बातें सुनायीं उनका खूब पूरा पूरा विवेचन करो और जो चाहो करो।'
व्यक्तिगत स्वातंत्र्य पर आखिर भगवान ने जो जोर दिया उसी की अभिव्यक्ति इस 'कुरल' में हम पाते हैं—

चाहे जिससे भी सुनें, कोई भी हो बात।
तत्त्व-बोध उस बात का, बुद्धियुक्तता ज्ञात ।। 62-423

इस संक्षिप्त लेख में तिरुक्कुरल और हिन्दी कविता में यत्र तत्र भाव-साम्य जो मेरे देखने में आया मैंने उसका परिचय दिया। अन्य भारतीय भाषा-भाषी विज्ञ पाठक अपनी भाषा की कृतियों में भी ऐसा भाव-साम्य पा सकते हैं और उसको प्रकाश में ला सकते हैं। इसका शुभ परिणाम यह होगा कि हम भारतीय यह पहचान सकेंगे कि भारत माता के अनेक वाणियाँ होने पर भी उसके एक हृदय है।

अनुवाद के संबन्ध में

मेरा विचार यह है कि अनुवाद करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि अनुवाद में मूल का भाव ज्यों का त्यों रहे।

मूल में जो है वह न छोड़ा जाय और जो नहीं है वह न जोड़ा जाय। अनुवाद की भाषा व शैली यों स्वाभाविक हों जिससे कोई उसे अनुवाद न कह सके। वैसे तो तिरुक्कुरल का अनुवाद गद्य में करना अधिक कठिन नहीं है। फिर वह उतना प्रभावित न कर सकेगा जितना पद्य। 'कुरल' से मिलता-जुलता छंद दोहा है और हिन्दी नीति-ग्रंथों में उसीका प्रयोग साधारणतः हुआ है। इस कारण से तिरुक्कुरल का दोहानुवाद उपयुक्त माना गया। 'खड़ी बोली खड़ी खड़ी रहती है, झुकती नहीं है इसलिए कविता के योग्य नहीं है'—यह विचार हिन्दी जगत में एक जमाने में था। पर आज दोहे में भी उसका प्रयोग करने की धृष्टता की जा रही है। तिरुक्कुरल के सारे ग्रंथ का अनुवाद 1330 दोहों में, वह भी खड़ी बोली में जो हो चुका है हिन्दी साहित्य में उसका प्रधान स्थान रहेगा ही।

मूल ग्रंथ में जो अर्थालंकार पाये जाते हैं उनको अनुवाद में उतारना साधारण बात है। परंतु अनुप्रास, श्लेष, वक्रोक्ति, यमक आदि शब्दालंकारों को भी इस अनुवाद में लाने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकरण में कुछ उदाहरण और आवश्यक स्थानों में मूल का लिप्यंतर दिये गये हैं।

मनुष्य को उद्यमी होना चाहिए और जो आलसी

तथा - निठल्ले बनकर
गपशप करने में मजा उड़ाते हैं वे समाज के लिए अभिशाप हैं
। तिरुवल्लुवर इन
निकम्मे लोगों को मानव जाति का पोल कहकर समाज से

उनको उड़ा देना चाहते
हैं। उनका कहना है—'ऐसे लोगों को मानव मत कहो,
मानव का पोल कहो।'

स्वीकारात्मक 'कहो' और निषेधात्मक 'मत कहो'
के लिए एक ही शब्द तमिल में
प्रयुक्त हुआ है। 'महन एनल्, मक्कट् पदडि एनल्'।
एनल् - मत कहो; एनल् -

कहो ('ए' सब ह्रस्व)। मैंने सोचा कि यह उक्तिवैचित्र्य
हिन्दी में भी क्यों न हो?

क्रिया पदों का विधि रूप मूल पद में तथा उसके साथ

'ना' जुड़कर भी आता है।
जैसे, चुप बैठ। चुप बैठना। 'ना' का प्रयोग निषेधात्मक 'मत' के अर्थ में होता है। बैठ, ना बैठ। इसी ढंग से 'कह', 'ना कह' क्रमशः 'कहो', 'मत कहो' अर्थ में प्रयुक्त करके मूल के अनुरूप शब्द-प्रयोग अनुवाद में भी किया गया।
पद्य में 'ना कह' को 'कह ना' करना स्वीकार्य है।

पयनिल चोल् पाराट्टुवानै (चो ह्रस्व)

महन् एनल् मक्कट् पदडि एनल् ।" (ए ह्रस्व) मूल-196

जिसको निष्फल शब्द में, रहती है आसक्ति ।

कह ना तू उसको मनुज, कहना थोथा व्यक्ति ।। 176-196

* * *

सांसारिक जीवन पानी के बिना चल ही नहीं सकता । शायद इसी वजह से तिरुक्कुरल में ईश्वर-वंदना के बाद तुरंत वर्षा की महिमा का वर्णन हुआ है । अगर पानी न बरसे तो समुद्र भी जो वर्षा का उद्गम-स्थान है अपना महत्व खो बैठेगा । इस आशय का 'कुरल' है—

घटा घटा कर जलधि को, यदि न करे फिर

दान।

विस्तृत बड़े समुद्र का, पानी उतरा जान॥ 6-17

तमिल में 'पानी कम हो जायगा' व्यंजित करने के लिये 'नीरमै कुन्ऱुम्'

शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन शब्दों का अर्थ यह भी लगाया जा सकता है कि

'गौरव नष्ट हो जायगा।'

बरसात का मीठा पानी न मिले तो मोती, मूँगे जैसे

जीव नष्ट हो जाएँगे जो समुद्र के गौरव हैं।

हिन्दी में भी गौरव के लिए 'पानी'

शब्द प्रयुक्त होता है जैसे तमिल में है।

उदाहरण:—पानी रखो; पानी गया या

पानी उतरा। समुद्र का पानी कम होता है या गौरव नष्ट होता है दोनों अर्थों में

अनुवाद में भी मूल के अनुसार श्लेष अर्थ में शब्दों के प्रयोग की संभावना से एक

तरह की संतुष्टि होती है न?

"नेडुम् कडलुम् तन् नीरमै कुन्ऱुम्' - (मूल-नें ह्रस्व)

बड़े समुद्र का पानी उतरा -

(अनुवाद)

घटा - बादल ; घटा कर - कम करके—यमक मूल में नहीं है। इस प्रसंग में
'रहीम' का दोहा याद आता है जिसमें 'पानी' का प्रयोग श्लेषालंकार में सुन्दर
ढंग से हुआ है।

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून ।
पानी गये न ऊबरै, मोती, मानुस, चून ।। 'रहीम'

* * *

xxxix

बेवकूफ़ के बारे में एक 'कुरल' है जिसमें यह बताया गया है कि बेवकूफ़ आप ही आपको इतना नुक़सान पहुँचाता है जितना उसका दुश्मन भी उसे नहीं पहुँचा सकता। भाषा का प्रयोग उसमें इस प्रकार हुआ है कि 'कुरल' का यह भी अर्थ हो सकता है कि बेवकूफ़ आप ही आपको इतना नुक़सान
पहुँचाता है जितना वह अपने दुश्मन को भी नहीं पहुँचाता। ऐसा विचित्र प्रयोग हिन्दी में भी है

जिसे मैं उदाहरण देकर समझाना चाहता हूँ।

मान लीजिये कि राम कृष्ण को देना है। व्याकरण के अनुसार यह गलत है।
देना है, जाना है आदि का प्रयोग होने पर कर्ता के साथ चतुर्थी विभक्ति जुड़ती है।
व्याकरण सम्मत भाषा 'रामको देना है' ठीक,
पर राम देना है, गलत है। तो
पहला वाक्य व्याकरण के अनुसार ऐसा होना चाहिये—राम को कृष्ण को देना है।
ऐसी हालत में अवश्य यह गड़बड़ी होगी कि देनेवाला कौन है और लेनेवाला कौन।

उक्त 'कुरल' का अनुवाद यों है—

जितनी पीड़ा मूढ नर, निज को देता आप
।

रिपु को भी संभव नहीं, देना उतना ताप
।। 450-843

'रिपु को भी उतना ताप देना संभव नहीं', ऐसा कहने में मूढ़ नर के द्वारा
रिपु को या रिपु के द्वारा मूढ़ नर को संभव नहीं, इस प्रकार दोनों अर्थ लगा
सकते हैं।

*   *

*

सत्संतान मानव जाति को परंपरा को अक्षुण्ण बनाये रखता है। इस कारण से
आज के युग में बच्चों का पालन-पोषण उचित रीति से करना केवल कुटुंब का भार
न समझकर राष्ट्र का मुख्य कर्तव्य भी माना जाता है।

तिरुवल्लुवर का विचार है

कि किसी की योग्यता को परख संतान से हो सकती है। योग्य संतान योग्य पिता
का लक्षण है। इस
आशय के 'कुरल' में 'संतान' के लिए एक लाक्षणिक शब्द का
प्रयोग हुआ है—'एच्चम्' (ए ह्रस्व)। ('एच्चम्' के माने हैं जो पीछे छोड़ा
जाय'। जब कि तिरुक्कुरल के प्रसिद्ध टीकाकार परिमेलष्कर ने 'एच्चम्' का
लाक्षणिक अर्थ 'संतान' माना है कुछ अन्य टीकाकारों ने उसका अर्थ 'कीर्ति' लगा

कर उसीको उपयुक्त बताया है। कारण यह है कि योग्य पुरुष अपने पीछे जो
कीर्ति छोड़ जाता है उससे उसकी योग्यता पहचानी जा सकती है। कभी कभी
योग्य व्यक्ति के अयोग्य संतान रह जाने से संतान के द्वारा योग्यता की पहचान

नहीं हो सकती ।

XL

तिरुक्कुरल के प्रथम भाग का अनुवाद जिसके अंतर्गत यह 'कुरल' भी है जब
प्रकाशित हुआ तब उसमें 'संतान' ही रहा ।

कोई ईमानदार हैं, अथवा बेईमान ।
उन उनकी संतान से, होती यह पहचान ।। 136-114

जब पूरे अनुवाद का प्रकाशन होने का अवसर आया तब मुझे सूझा कि मैं
व्यर्थ इस सोच-विचार में पड़ गया कि 'एच्चम' का माने 'संतान' लिया जाय या
'सत्कीर्ति' ।
मूल का शब्दानुवाद 'अवशेष' ही क्यों न हो ? बस, वही हुआ ।

कोई ईमानदार हैं, अथवा बेईमान ।
उन उनके अवशेष से, होती यह पहचान ।। 136-114

अनुवाद के प्रकाशन के कुछ महीनों के बाद मेरे मित्र

श्री नागराज शर्मा ने जो

संस्कृत के प्राध्यापक हैं मुझे बुलाकर यह बताया कि अवशेष या शेष (एच्चम्) का

अर्थ संतान ही इस प्रसंग में होना चाहिये। इसका आधार यह देखिये। वे यास्क

विरचित वैदिक निरुक्त के पन्ने उलट रहे थे और उसमें ऋग्वेद के एक मंत्र का

टीका यों था—

'न शेषो अग्ने अन्य जातम् अस्ति'। शेषः इति अपत्य नाम। शेषः शिष्यते

यतः। गच्छतः इतो लोकात् अमुं लोकं पितुः शिष्यते। इहैव लोके अवतिष्ठते।"

याने शेष का अर्थ अपत्य अर्थात् संतान है। पिता के इह लोक से पर-लोक जाने के

बाद वही यहाँ रह जाता है। तब यह मालूम हुआ कि प्रसिद्ध टीकाकार

परिमेलष्कर ने किस आधार पर 'एच्चम्' का अर्थ 'संतान' माना और उनकी

विद्वत्ता कितनी थी। यह सुनने में आया कि जब एक महापुरुष का पुत्र अयोग्य

रह गया तब उनसे उसका कारण यह बताया गया—'उसके

जनन-काल में मुझमें
तमोगुण का आधिक्य रहा होगा। इसलिये दोष तो मेरा ही है
संतोष तो हुआ कि अनुवाद मूल के अनुरूप सिद्ध हुआ।
।' आखिर यह

* *
*

प्रणय-कलह का मधुर प्रसंग है। नायिका झूठ-मूठ रूठने का कोई कारण बड़ी कुशलता से ढूंढ लेती है, इसका वर्णन नायक सखा से करता है।

न कोई
उसका
कथन है—मैंने कहा 'हम सबसे बढ़कर प्यार करते हैं।'

ज्यों ही मैंने यह कहा

xLi

त्योंही वह मान करने लगी। वह पूछने लगी 'किस
किससे मुझे अधिक
प्यार करते हैं?'

'हम सबसे बढ़कर प्यार करते हैं' कहने में नायक
का तात्पर्य यह था कि वे
आदर्श दंपती हैं। उनके समान परस्पर प्रेम करनेवाला
जोड़ा नहीं है।

नायिका ने 'हम' का बहुवचन न मान कर उसका

एक वचन अर्थ लगाया

जो बहुमान के लिये प्रयुक्त होता है। 'मैं सबसे बढ़कर प्यार करता हूँ' (तुमको)

तो नायिका का यह प्रश्न था कि उसकी और प्रेमिकाएँ कौन कौन हैं? किस किससे

बढ़कर वह उसे प्यार करता है? बेचारा क्या जवाब देगा?

तमिल में उत्तम पुरुष बहुवचन का प्रयोग जो एक वचन में सम्मानार्थ होता

है उसीपर इस 'कुरल' का रस अवलंबित है। वैसा ही प्रयोग हिन्दी में भी होने

के कारण अनुवाद में भी उसको उतारने में कोई कष्ट न हुआ।

'सबसे बढ़' मैंने कहा,
'हम करते हैं प्यार'।
किस किससे कहती हुई, लगी
रूठने यार ।। 591-1314

* * *

केरल के एक कवि ने राजसभा में यों श्लोक सुनाया :—

दारिद्रचस्य दयालुत्वं किं ब्रवीमि
महीपते ।

आत्मनाश अनादृत्यं भंवन्त मा
अदशयत् ।।

श्लोक सुनकर सहृदय राजा आनंद-विभोर
हो गये और कवि का यथोचित
सम्मान किया । सरल संस्कृत में सारगर्भित यह श्लोक
किस सहृदय को प्रभावित
न करेगा । उसका अर्थ यह है—

'महाराज'
दारिद्रय के दयालुत्व का कहाँ तक मैं वर्णन करूँ ? अपने नाश
की परवाह न करके उसने मुझे आपके दर्शन कराये ।'
इसका विश्लेषण करने पर
ये भाव स्पष्ट होते हैं ।
राजा के दर्शन करने पर दरिद्रता मिट जायगी । तो राजा
को उसे खाली हाथ नहीं लौटा देना चाहिये । यही नहीं, उदारता के साथ इतना देना चाहिये कि कवि को फिर दरिद्रता से पीड़ित होकर याचना न करना पड़े ।
दरिद्रता ने कवि का घनिष्ठ
मित्र होने के कारण उसके उद्धार के लिये अपने नाश

की परवाह न की । उत्तम मित्र का लक्षण है । कितना व्यंग्य

vi

है इस श्लोक में !

xLii

दान के प्रकरण में इसी भाव का एक 'कुरल' है । उसका शब्द-विन्यास

इस प्रकार है जिससे एक से अधिक अर्थ निकलते हैं । दानी जो उत्तम कुल का है

इस प्रकार दान करता है कि (1) याचक के मांगने के पहले ही उसके कष्ट का

अनुमान करके दान करता है । (2) याचक को इतना देता है कि फिर किसी के

पास जाकर दीनता-प्रदर्शन करने की जरूरत न पड़े । (3) दानी (यदि वह स्वयं

दीन हो गया तो भी) अपनी हीनता—न प्रकट करके दे ही देता है । मूल के

अनुसार अनुवाद को भी भावगर्भित करने में कितनी सफलता मिली है, इसका

निर्णय विज्ञ पाठक करें ।

'दीन-हीन हूँ' ना कहे, करता है

यों दान ।

केवल प्राप्य कुलीन में, ऐसी
उत्तम बान ॥ 188-223

*   *
*

संस्कृत के तत्सम या तद्भव शब्द तिरुक्कुरल में
कहीं कहीं मिलते हैं तो उनका
प्रयोग हिन्दी में भी स्वीकार्य होने के कारण यथासंभव
अनुवाद में वैसा ही स्थान
उन्हें देने का प्रयत्न किया गया है ।
ये कुछ उदाहरण हैं—

नीर बिना भूलोक का, ज्यों न चले
व्यापार ।
कभी किसी में नहिं टिके, वर्षा बिन आचार ॥
8-20

मधुर भाषिणी सुतनु का, सित रद
निस्सृत नीर ।
यों लगता है मधुर वह, ज्यों

मधु-मिश्रित क्षीर ।। 518-1121

इन कुरलों में 'नीर' शब्द का जो प्रयोग हुआ है, मूल में भी वही है। दूसरा 'कुरल' शृंगार प्रकरण में है। नायक का कथन है कि नायिका के, जो मीठी बातें करती है, सफ़ेद दांतों से निकला हुआ पानी इतना मीठा लगता है मानों शहद मिला हुआ दूध हो। तमिल में समास शैली में 'वालेयिरूरिय नीर' (ले ह्रस्व) प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ साधारण गद्य में 'सफ़ेद दांतों से निकला हुआ पानी' है। हिन्दी में भी पद्य के अनुरूप शैली में 'सित रद निस्सृत नीर' अनुवाद किया गया है। 'वालेयिरूरिय नीर'—'सित रद निस्सृत नीर', वह कैसा है? 'ज्यों मधु-मिश्रित क्षीर'। प्रभावात्मक ढंग से भाव को व्यंजित करने की क्षमता मूल के अनुरूप पद्यानुवाद में ही रहेगी, इसके समर्थन में यह एक नमूना है।

* * *

XLIII

मोर-पंख से ही सही, छकड़ा लादा जाय।

यदि लादो वह अत्यधिक, अक्ष भग्न हो जाय ।। 429-475

छकड़ा भारी बोझ लादने की गाड़ी है। इसके लिए 'कुरल' में 'चाकाट्टु' शब्द है। धुरी के लिये 'अच्चु' है। 'शकट' और 'अक्ष' के तद्भव शब्द जो

मूल में आये हैं अनुवाद में भी उसीके अनुरूप 'छकड़ा' और 'अक्ष' शब्द रखे

गये हैं।

तिरस्कार करना नहीं, छोटा क़द अवलोक।

चलते भारी यान में, अक्ष-आणि ज्यों लोग ।। 96-667

'धुरी की कील' के लिये मूल में 'अच्चाणि' है जो अच्चु+आणि की संधि

से होता है। संस्कृत आणि का प्रयोग तमिल और हिन्दी में होता है यद्यपि

तमिल में व्यावहारिक है और हिन्दी में वैसा नहीं।

* * *

पालन करते जी रहें, जो निर्मल कुल-धर्म।

यों जो हैं वे ना करें, छल से अनुचित कर्म ।। 483-956

इसके मूल 'कुरल' में 'कपट' के लिये 'चल' प्रयुक्त है जो 'छल' का

तत्सम है। उसी का प्रयोग अनुवाद में भी हुआ है।

*   *   *

अनुवाद के कतिपय दोहों में शब्द-विन्यास मूल का जैसा हुआ है। निम्न के

कुछ नमूने हैं जो मूल के लिप्यंतर सहित दिये गये हैं।

1. पडै कुडि कूष् अमैच्चु नट्परण आरुम्

उडैयान् अरशरुल् एरु।

(मूल)

सैन्य राष्ट्र धन मित्रगण, दुर्ग अमात्य षडंग।

राजाओं में सिंह है, जिसके हों ये संग ॥ 301-381

2. कुणनुम् कुडिमैयुम् कुट्रमुम् कुन्रा

इननुम् अरिन्तियाक्क नट्पु।

(मूल)

गुण को कुल को दोष को,

जितने बंधु अनल्प ।

उन सबको भी परख कर, कर मैत्री का कल्प ।।
226-793

3. कुणम् नाडिक् कुट्रमुम् नाडि अवट्रुळ

मिकै नाडि मिक्क कोळल् । (मूल, को ह्रस्व)

परख गुणों को फिर परख, दोषों को भी छान ।

उनमें बहुतायत परख, उससे कर पहचान ।। 72-504

4. इन्ना चेयतार्कुम् इनियवे चेय्याक्काल् (चे ह्रस्व)

एन्न पयत्ततो शालपु । (मूल । ए ह्रस्व)

अपकारी को भी अगर, किया नहीं उपकार ।

होता क्या उपयोग है, होकर

गुण-आगार ।। 646-987

5. पिरर्कु इन्ना मुर्पकल् चेय्यिन्
तमक्कु इन्ना

पिर्पकल् तामे वरुम् । (मूल चे
ह्रस्व)

दिया सबेरे अन्य को, यदि तुमने
संताप ।

वही ताप फिर सांझ को, तुमपर आवे
आप ।। 650-319

6. उडंपाडु इलातवर वाष्कै
कुडंकरुळ्

पांपोडु उडनुरैन्दट्रु ।
(मूल)

जिनसे मन मिलता नहीं, जीवन उनके
संग ।

एक झोंपडी में यथा, रहना सहित
भुजंग ।। 93-890

7. ओ ओ इनिते एमक्किन् नोय् चेयत कण्

ता अम् इतपॅट्टतु । (मूल । ए, चे ह्रस्व)

ओहो यह अति सुखद है, मुझको दुख में डाल ।

अब ये दृग सहते स्वयं, यह दुख, हो बेहाल ।।

536-1176

xLv

8. वाराक्काल् तुंजा वरिन् तुंजा आयिडै

आरजर उट्रन कण् । (मूल)

ना आवें तो नींद नहिं, आवें नींद न आय ।

दोनों हालों में नयन, सहते हैं अति हाय ।। 537-1179

* * *

जहाँ अनुप्रास से 'कुरल' अलंकृत है वहाँ अनुवाद में भी वैसा करने का प्रयत्न हुआ है—

1. तुप्पार्कुत् तुप्पाय तुप्पाक्कित् तुप्पार्कुत्

तुप्पायतू उम् मषै । (मूल)

आहारी को अति रुचिर, अन्नरूप आहार ।

वृष्टि सृष्टि कर फिर स्वयं, बनती है आहार ।। 4-12

2. चुडच्चुडरुम् पोन् पोल् ओळि विडुम् तुन्पम्

चुडच्चुड नोर्किर्पवर्कु । (मूल । पोन्-पो ह्रस्व । ओ ह्रस्व)

तप तप कर ज्यों स्वर्ण की, होती निर्मल कांति
।

तपन ताप से ही तपी, चमक उठे उस
भांति ।। 664-267

3. एण्णिय एण्णियांगु एय्तुप
एण्णियार

तिण्णियराकप् पेरिन् । (ए सब और पे
ह्रस्व)

संकल्पित सब वस्तुएँ, यथा किया
संकल्प ।

संकल्पक पा जायगा, यदि
वह दृढ संकल्प ।। 100-666

4. वेण्डुंकाल् वेण्डुम् पिरवामै मट्रतु
वेण्डामै वेण्ड वरुम् । (मूल)

जन्म-नाश की
चाह हो, यदि होनी है चाह ।

चाह-नाश की चाह से,

पूरी हो वह चाह ।। 690-362

XLvi

5. चेल्वत्तुळ् चेल्वम् चेविच्चेल्वम्

अच्चेल्वम् चेल्वत्तुळ् एल्लाम् तलै । (मूल

। चे सब, ए ह्रस्व)

धन धन में तो श्रवण धन, रहता

अधिक प्रधान ।

सभी धनों में धन वही,

पाता शीर्षस्थान ।। 53-411

6. कर्क कच्चटरक् कर्पवै

कट्रपिन्

निर्क अतर्कुत् तक ।

(मूल)

सीख सीखने योग्य सब, भ्रम संशय बिन सीख ।

कर उसके अनुसार फिर, योग्य आचरण ठीक ।। 41-391

* * *

तिरुक्कुरल 'अकर' से आरंभ होता है । 'अकर' 'अकार' का तमिल रूप है ।

अकर मुतल एषुत्तेल्लाम् आदि

भगवन् मुतट्रे उलकु । (मूल । ए, ते-ह्रस्व)

अंतिम 'कुरल' का (1330 वाँ) अंतिम शब्द 'पेरिन्' है । तमिष् वर्णमाला का प्रारंभिक वर्ण 'अ' और अंतिम वर्ण 'न्' हैं । इसके संबंध में यह चाटु उक्ति है कि सारी कृति वर्णमाला के 'अ' से 'न्' तक व्याप्त है । 'अक्षराणाम् अकारोऽस्मि' गीता वाक्य है ।

इसलिये मूल में प्रथम शब्द 'अकर' मंगलवाचक है।

अनुवाद में—

अक्षर सब के आदि में, है अकार का स्थान।

अखिल लोक का आदि तो, रहा आदि भगवान ॥

अक्षर परब्रह्म का विशेषण वाचक है। 'अक्षरं ब्रह्म परमं'-गीता।

काव्यारंभ में 'भ' गण ऽ।। भी मंगलवाची है। अंतिम 'कुरल' के अनुवाद में (1330-सतसई में 600) अंतिम शब्द 'उत्साह' है। नागरी वर्णमाला के अनुसार 'अ' से 'ह' तक, तमिल के अनुरूप अनुवाद, यह भी अक्षर———उत्साह के अन्तर्गत व्याप्त है।

अनुवाद से संबंधित इस लेख में मैंने कुछ उदाहरणों के द्वारा यह दिखाने का प्रयास किया कि पद्यानुवाद होने पर भी मूल-कृति के अनुरूप अनुवाद किया गया है। इसकी सार्थकता का निर्णय ठीक ठीक वे ही कर सकते हैं जो तमिल और हिन्दी के ज्ञाता हैं।

पद्य-बद्ध कृति का पद्य-बद्ध अनुवाद साधारणतः असंभव माना जाता है ।
फिर भी भारतीय भाषाओं की गठन में ऐसी साम्यता है जो यह असंभव कार्य करने को भी प्रोत्साहित करती है । फलस्वरूप यह कार्य साधारणतः साध्य न होने पर भी दुस्साध्य तो बन जाता है, पर असाध्य नहीं रह जाता ।

मु. गो. वेंकटकृष्णन्

प्रकाशक का वक्तव्य

तमिल साहित्य के उत्तम ग्रंथ तिरुक्कुरल के अनुवाद का एक संक्षिप्त संस्करण 'तिरुक्कुरल सतसई' हिन्दी संसार को प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है । सन् 1967 में तिरुक्कुरल का संपूर्ण अनुवाद प्रकाशित हो चुका है । उसके प्रकाशन में भी बड़ा भाग लेनें का मुझे सौभग्य मिला था । इस प्रकार का एक संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित करने से यह बड़ा लोकप्रिय बनेगा, ऐसा मेरा विश्वास है । इसके पहले सप्तशतक के रूप में तिरुक्कुरल का प्रकाशन न

हुआ । यह विदित है कि हिन्दी साहित्य में ऐसी कई सप्तशती (सतसइयाँ) हैं ही । इसीलिये इसके संपादक तथा अनुवादक श्री मु. गो. वेंकटकृष्णन ने समझा कि तिरुक्कुरल की भी हिन्दी सतसई प्रस्तुत करनी चाहिये ।

श्री मु. गो. वेंकटकृष्णन भारत के स्वतंत्र होने के पहले से ही सन् 1935 में तमिलनाडु में हिन्दी अध्यापन का कार्य आरंभ किया और सन् 1974 तक उसीमें लगे रहे । आरंभ काल में लगभग बारह वर्ष आप हाई स्कूलों में काम करते रहे । फिर सन् 1947 में जब डॉ. अलगप्पा चेट्टियार ने कारैक्कुडि में एक कालेज स्थापित किया तब आप उसके हिन्दी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त किये गये और सन् 1974 में काम से अवकाश प्राप्त होने तक वहीं रहे । तमिल और हिन्दी के आप बड़े प्रेमी हैं । इस ग्रंथ के अलावा आपने तमिल साहित्य के श्रेष्ठ ग्रन्थ 'शिलप्पधिकारम'

का कथा-सार 'नूपुर-गाथा' के नाम से लिखा और उसका प्रकाशन कलकत्ता के भारती तमिल संगम् ने किया। बी.काम. के विद्यार्थियों के लिये आपका लिखा हुआ व्यापारी पत्र-व्यवहार विद्यार्थी जगत में बड़ा लोकप्रिय रहा। उस समय के बी.काम. के विद्यार्थियों के लिये हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान एक तरह से अनिवार्य था। आप मानते हैं आपके तिरुक्कुरल् का

अनुवाद अपने जीवन में सर्वोत्कृष्ट कार्य है।

L

मद्रास का हिन्दी प्रचार प्रेस अपनी छपाई-सफ़ाई के लिये बहुत प्रसिद्ध है। उसके कार्य-कर्ताओं ने इसको सुचारु रूप में प्रकाशित करने में बड़ा उत्साह दिखाया है और उसके फलस्वरूप यह ग्रंथ हिन्दी के विज्ञ पाठकों के कर-कमलों में है। इसके लिये उन सबको अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मेरी आशा है कि इस नये संस्करण का

हिन्दी-जगत स्वागत करेगा और इसके कई संस्करण प्रकाशित करने का भाग्य मुझे मिलेगा ।

ना. महालिंगम्

तिरुक्कुरल मूल-ग्रंथ

विषय-सूची

धर्म-कांड 20

21

उपोद्‌घात : 22

अध्याय 23

24

1 ईश्वर-स्तुति

2 वर्षा-महत्व

3 संन्यासी-महिमा

4 धर्म पर आग्रह

गार्हस्थ्य धर्म :

अध्याय

5 गार्हस्थ्य
6 सहधर्मिणी-उत्कर्ष
7 संतान-लाभ
8 प्रेम-भाव
9 अतिथि-सत्कार
10 मधुर-भाषण
11 कृतज्ञता
12 मध्यस्थता
13 संयमशीलता
14 आचारशीलता
15 परदारविरति

16 क्षमाशीलता

17 अनसूयता

18 निर्लोभता

19 अपिशुनता

की

वृथालाप-निषेध
पाप-भीरुता
लोकोपकारिता
दान
कीर्ति

संन्यास-धर्म :

अध्याय

25 दयालुता
26 मांस-वर्जन
27 तप
28 मिथ्याचार
29 अस्तेय
30 सत्य
31 अक्रोध
32 अहिंसा
33 वध-निषेध
34 अनित्यता

35 संन्यास
36 तत्वज्ञान
37 तृष्णा का उन्मूलन

नियति प्रकरण :

अध्याय

38 नियति

अर्थ-कांड

शासन-प्रकरण :

अध्याय

39 महीश-महिमा
40 शिक्षा
41 अशिक्षा
42 श्रवण
43 बुद्धिमत्ता
44 दोष-निवारण
45 सत्संग-लाभ
46 कुसंग-वर्जन
47 सुविचारित कार्यकुशलता
48 शक्ति का बोध

49 समय का बोध
50 स्थान का बोध
51 परख कर विश्वास करना
52 परखकर कार्य सौंपना
53 बंधुओं को अपनाना
54 अप्रमत्तता
55 सुशासन
56 क्रूर शासन
57 भयकारी कर्म न करना
58 दया दृष्टि
59 गुप्तचर-व्यवस्था
60 उत्साहयुक्तता
61 आलस्यहीनता
62 उद्यमशीलता
63 संकट में अनाकुलता

64 अमात्य
65 वाक्-पटुत्व
66 कर्म-शुद्धि

Lil

अंग-प्रकरण :

अध्याय

67 कर्म में दृढ़ता
68 कर्म करने की रीति
69 दूत
70 राजा से योग्य व्यवहार
71 भावज्ञता

72 सभा-ज्ञान
73 सभा में निर्भीकता
74 राष्ट्र
75 दुर्ग
76 वित्त-साधन-विधि
77 सैन्य-माहात्म्य
78 सैन्य-साहस
79 मैत्री
80 मैत्री की परख
81 चिर-मैत्री
82 बुरी मैत्री
83 कपट मैत्री
84 मूढ़ता

85 अहम्मन्य मूढ़ता

86 विभेद

87 शत्रुता-उत्कर्ष

88 शत्रु-शक्ति का ज्ञान

89 अन्तर्वैर

90 बड़ों का अपचार न करना

91 स्त्री-वश होना

92 वार-वनिता

93 मद्य-निषेध

94 जुआ

95 औषध

शेष-प्रकरण :

अध्याय

96 कुलीनता

97 मान

98 महानता

99 सर्वगुणपूर्णता

100 शिष्टाचार

101 निष्फल धन

102 लज्जाशीलता

103 वंशोत्कर्ष-विधान

104 कृषि

105 दरिद्रता

106 याचना
107 याचना-भय
108 नीचता

काम-कांड

गुप्त-संयोग :

अध्याय

109 सौंदर्य की पीड़ा
110 संकेत समझना
111 संयोग का आनंद
112 सौंदर्य-वर्णन

अध्याय
113 प्रेम-प्रशंसा
114 लज्जा-त्याग-कथन
115 प्रवाद जताना

पातिव्रत्य :
116 विरह-वेदना
117 विरह-क्षामा की व्यथा
118 नेत्रों का आतुरता से क्षय
119 पीलापन-जनित पीड़ा
120 विरह वेदनातिरेक
121 स्मरण में एकान्तता-दुःख

122 स्वप्नावस्था का वर्णन
123 संध्या-दर्शन से व्यथित होना
124 अंगच्छवि-नाश
125 हृदय से कथन
126 धैर्य-भंग
127 उनकी उत्कंठा
128 इंगित से बोध
129 मिलन-उत्कंठा
130 हृदय से रूठना
131 मान
132 मान की सूक्ष्मता
133 मान का आनंद



कुछ सम्मतियाँ

श्री नन्ददुलारे बाजपेयी,

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय,

……प्राचीन ग्रन्थों का हिन्दी में छन्दोबद्ध अनुवाद अत्यन्त उपयोगी कार्य है

क्योंकि गद्य में किये गये अनुवादों के प्रति लोगों का विशेष आकर्षण नहीं होता।

श्री वेंकटकृष्णन का यह अनुवाद सरल और सुपाठ्य दोहा छंद में किया गया है,

जिससे भाव और अर्थ का अच्छा स्पष्टीकरण हो जाता है। मैं इस अनुवाद का स्वागत करता हूँ… ..

मा. स. गोळवलकर,

नागपुर-2
डा. हेडगेवार भवन
21-3-68

......(अनुवाद) अति मधुर उतरा है। यह अनुवाद है यह बात किसी से नहीं कही तो इसको मूल ग्रंथ माना जा सकेगा। इतना सहज सरल सुन्दर यह बना है।......

Suniti KUMAR CHATTERJI,

National Professor of India in Humanities,
Belvedere, National Library Campus
Calcutta-27.

......This translation I would consider remarkable as it has been done straight from Tamil by a Tamil speaker into Hindi of which, by his translation, he has shown himself to be an erudite scholar who can handle the language with perfect grace and vigour.... ...The verses run smooth, the vocabulary is chaste Hindi with some archaic words and forms which add a special

flavour to poetry of a classical type such as we find in the Kural, and it deserves to be popular among Hindi readers......

LV

G. VANMIKANATHAN
(in his book Random Recollections)

......He has presented the world an incomparable translation in a metre very much similar to that of the original. Anyone not acquainted with the original, it is no exaggeration to say, would take M. G. V's Hindi Tirukkural as an original product. And he has not missed the minutest nuances of expression in the original, he has brought out all of them faithfully in his rendering.......

K KRISHNAN, Madhya Pradesh Chronicle, Deputy Secy. to M. P. Govt. (Retd) Bhopal, January, 6, 1968.

......I can say without fear of contradiction

that the dohas seem to have all the crispness, all the thrust and challenge and indeed; all the snappy exclamations of the original. And in keeping measure with the original text they are as short as short can be.......

तिरुक्कुरल सतसई

विषय-सूची

1. सूक्ति शतक ... दोहे
2. गार्हस्थ्य शतक ... ,,
3. समाज नीति शतक ... ,,
4. राजनीति शतक ... ,,
5. अर्थनीति शतक ... ,,

6. श्रृंगार शतक ... „
7. विवेक शतक ... „

	पृष्ठ
1—100	3
101—200	15
201—300	27
301—400	39
401—500	51

501——600 63

601——700 77

सूक्ति शतक

सीख सीखने योग्य सब,
भ्रम संशय बिन सीख ।
कर उसके अनुसार फिर,
योग्य आचरण ठीक ॥ 41-391

सूक्ति शतक

क्रम संख्या

क्र. सं. मूल में

1. अक्षर सबके आदि में, है अकार का स्थान ।
अखिल लोक का आदि तो,
रहा आदि भगवान ।। 1

2. विद्योपार्जन भी भला, क्या
आयेगा काम ।
श्रीपद पर सत्यज्ञ के, यदि नहिं किया
प्रणाम ।। 2

3. उचित समय की वृष्टि से, जीवित है संसार ।
मानी जाती है तभी, वृष्टि
अमृत की धार ।। 11

4. आहारी को अति रुचिर, अन्नरूप
आहार ।

वृष्टि सृष्टि कर फिर स्वयं, बनती है आहार ।। 12

5. बिना हुए आकाश से, रिमझिम रिमझिम वृष्टि ।
हरी भरी तृण नोक भी, आयेगी नहिं दृष्टि ।। 16

6. घटा घटा कर जलधि को, यदि न करे फिर दान ।
विस्तृत बड़े समुद्र का, पानी उतरा जान ।। 17

7. देवाराधन नित्य का, उत्सव सहित अमंद ।
वृष्टि न हो तो भूमि पर, हो जावेगा बंद ।। 18

8. नीर बिना भू लोक का, ज्यों न चले

व्यापार ।

कभी किसी में

नहिं टिके, वर्षा बिन आचार ।। 20

9. प्रेम-शून्य जन स्वार्थरत, साधें सब निज काम ।
प्रेमी अन्यों के लिये, त्यागें हड्डी-चाम ।। 72

टिप्पणीः—6. घटा-बादल ।—पानी उतरना-गौरव नष्ट होना ।

4

10. प्रेम-मार्ग पर जो चले, देह वही सप्राण ।

चर्म-लपेटी अस्थि है, प्रेम-हीन की मान ।। 80

11. बाहर ठहरा अतिथि को, अंदर बैठे आप ।

देवामृत का क्यों न हो,

भोजन करना पाप ।। 82

12. मन प्रसन्न हो कर सही,
करने से भी दान ।
मुख प्रसन्न भाषी मधुर, होना उत्तम मान ।।
92
13. दुख-वर्द्धक दारिद्रय भी,
छोड़ जायगा साथ ।
सुख-वर्द्धक प्रिय वचन यदि, बोले

सबके साथ ।। 94

14. मृदु भाषी होना तथा, नम्र भाव से युक्त ।
सच्चे भूषण मनुज के, अन्य नहीं है उक्त ।। 95

15. रहते सुमधुर वचन के,
कटु कहने की बान ।
यों ही पक्का छोड़ फल,

कच्चा ग्रहण समान ।। 100

16.

चाहे औरों को नहीं, रख लें वश में जीभ ।

शब्द-दोष से हों दुखी, यदि न वशी हो जीभ ।। 127

17. एक बार भी कटु वचन,

सत्कर्मों के सुफल सब,

पहुँचाये यदि कष्ट ।

हो जायेंगे नष्ट ।। 128

18. घाव लगा जो आग से, संभव है भर जाय ।
चोट लगी यदि जीभ की, कभी न मेटी जाय ।। 129

19. अपनी वाणी ही रही, लाभ-हानि का मूल ।
इससे रहना सजग हो, न हो बोलते भूल ।। 642

20. शक्ति समझ कर चाहिये, करना शब्द प्रयोग ।
इससे बढ़ कर है नहीं, धर्म अर्थ का योग ।। 644

21. भाषण-पटु निर्भय तथा, रहता जो अश्रान्त ।
उसपर जय प्रतिवाद में, पाना कठिन नितान्त ।। 647

22. प्राज्ञों के सम्मुख रहो, तुम भी प्राज्ञ सुजान ।
मूर्खों के सम्मुख बनो, चून सफ़ेद समान ।। 714

23. भले गुणों में है भला, ज्ञानी गुरुजन मध्य ।
आगे बढ़ बोलें नहीं, ऐसा संयम पथ्य ।। 715

24. बुद्धिमान के सामने, जो बोलता सुजान ।

क्यारी बढ़ती फ़सल की, यथा सींचना जान ।। 718 25. सज्जन-मंडल में करें, जो प्रभावकर बात ।

मूर्ख सभा में भूल भी, करें न कोई बात ।। 719 26. यथा उँडेला अमृत है, आंगन में अपवित्न ।

भाषण देना है वहाँ, जहाँ न गण हैं मित्न ।। 720 27. जो प्रभावकर ढंग से, अर्जित शास्त्न-ज्ञान ।

प्रकटे विज्ञ समक्ष जो, विज्ञों में विद्वान ।। 722

28. शत्रु-मध्य मरते निडर, मिलते सुलभ अनेक ।
सभा-मध्य भाषण निडर, करते दुर्लभ एक ।। 723

29. सभा-भीरु को प्राप्त है, जो भी शास्त्र-ज्ञान ।
कायर-कर रण-भूमि में, तीक्षण खड्ग समान ।। 727

टिप्पणी :—22. चून सफ़ेद—तमिल में इसका अर्थ मूर्ख है ।

6

30. जो होते भयभीत हैं, विज्ञ-सभा के बीच ।
रखते शास्त्र-ज्ञान भी, अनपढ़ से हैं नीच ।। 729

31. भला नहीं है भूलना, जो भी हो उपकार ।

अच्छा है झट भूलना, कोई भी
अपकार ।। 108
32. जो भी पातक नर करे, संभव है
उद्धार ।
पर है नहीं कृतघ्न का, संभव ही
निस्तार ।। 110 33. तजने से निष्पक्षता,
जो धन मिले अनन्त ।
भला, भले ही, वह करे, तजना उसे
तुरन्त ।। 113 34. सदाचार-संपन्नता,
देती सबको श्रेय ।
तब तो प्राणों से अधिक, रक्षणीय वह ज्ञेय ।।

131 35. जलन-रहित निज मन रहे, ऐसी
उत्तम बान ।
अपनावे हर एक नर, धर्म आचरण मान ।।

161 36. चाहो मत

संपत्ति को, लालच से उत्पन्न ।
उसका फल होता
नहीं, कभी सुगुण-संपन्न ।। 177

37. परछिद्रान्वेषण सदृश, यदि देखे निज दोष ।
तो अविनाशी जीव का, क्यों हो दुख से शोष ।। 190

38. नाशरहित उसको समझ, जो तजकर सन्मार्ग ।
पाप-कर्म को नहिं करे, पकड़े
नहीं कुमार्ग ।। 210

39. जगत-प्रकृति है नियतिवश, दो प्रकार
से भिन्न ।
श्रीयुत होना एक है, ज्ञान प्राप्ति
है भिन्न ।। 374

40. कठिन यत्न भी ना रखे, जो न रहा
निज भाग ।
निकाले नहीं निकलता, जो है अपने
भाग ।। 376

41. सीख सीखने योग्य सब, भ्रम संशय
बिन सीख ।
कर उसके अनुसार फिर, योग्य आचरण ठीक ।।
391

42. कहलाते हैं
नेत्रयुत, जो हैं विद्यावान ।
मुख पर रखते घाव दो, जो हैं अपढ़ अजान ।।
393

43. जितना खोदो पुलिन में, उतना निकले
नीर ।
जितना शिक्षित नर बने, उतनी मति
गंभीर ।। 396

44. अपना है विद्वान का, कोई पुर या राज ।

फिर क्यों रहता मृत्यु तक, कोई अपढ़ अकाज ।। 397

45. जो विद्या इक जन्म में, नर से पायी जाय ।

सात जन्म तक भी उसे, करती वही सहाय ।। 398

46. हर्ष हेतु अपने लिए, वैसे जग हित जान ।

उस विद्या में और रत, होते हैं विद्वान ।। 399

47. शिक्षा धन है मनुज हित, अक्षय और यथेष्ट ।

अन्य सभी संपत्तियाँ,

होती हैं नहिं श्रेष्ठ ।। 400

48. अपढ़ लोग भी मानिये, उत्तम गुण का भौन ।

विद्वानों के सामने, यदि साधेंगे मौन ।। 403

49. माने यदि कोई अपढ़, बुद्धिमान ही आप ।

मिटें भाव वह जब करे, बुध से वार्त्तालाप ।। 405

टिप्पणी :— 46 जान-जानकर

8

50. जीवित मात्र रहा अपढ़, और न कुछ वह जान । उत्पादक जो

ना रही, ऊसर भूमि समान ॥ 406

51. सूक्ष्म बुद्धि जिसकी नहीं,
मिट्टी की सुठि मूर्ति सम,

52. उच्च जाति का क्यों न हो,
नीच किंतु शिक्षित सदृश,

53. धन धन में तो श्रवण धन,
सभी धनों में धन वही,

प्रतिभा नहीं अनूप ।

उसका खिलता रूप ॥ 407

तो भी अपढ़ अजान ।
पाता नहिं सम्मान ॥ 409

रहता अधिक प्रधान ।
पाता शीर्षस्थान ॥ 411

54. कानों को जब ना

मिले, श्रवण रूप रस पान ।
दिया जाय तब पेट को, कुछ भोजन का दान ॥

412

55. जिनके

कानों को मिला, श्रवण रूप में भोग ।
हवि के भोजी देव सम, भुवि में हैं वे लोग ॥

413

56. श्रवण करो सद्विषय का, जितना ही हो अल्प ।
    अल्प श्रवण भी तो तुम्हें, देगा मान अनल्प ।।

416

57. जो जन अनुसंधान कर, रहें बहुश्रुत साथ ।
    यद्यपि भूलें मोहवश, करें न जड़ की बात ।। 417

58. श्रवण श्रवण करके भला, छिद न गये जो कान ।
    श्रवण-शक्ति रखते हुए, बहरे कान समान ।। 418

59. जो जाने बिन श्रवण रस, रखता जिह्वा-स्वाद । चाहे जीये या मरे,

उससे सुख न विषाद ।। 420

60. रक्षा हित है नाश से, बुद्धि रूप औज़ार ।
है भी रिपुओं के लिये, दुर्गम दुर्ग अपार ।। 421

61. मनमाना जाने न दे, पाप मार्ग से थाम ।
मन को लाना सुपथ पर, रहा बुद्धि का काम ।। 422 62. चाहे जिससे भी सुनें, कोई भी हो बात ।
तत्व-बोध उस बात का, बुद्धियुक्तता ज्ञात ।। 423 63. जैसा लोकाचार है, उसके ही उपयुक्त ।
जो करना हैं आचरण,

वही सुधी के युक्त ।। 426
64. निर्भयता भेतव्य से, है जड़ता का
नाम ।
भय रखना
भेतव्य से, रहा सुधी का काम ।। 428 65.
जो होनी को जान कर, रक्षा करता आप
।
दु:ख न दे उस प्राज्ञ को,
भयकारी संताप ।। 429 66. करना ऐसा
आचरण, जिससे पुरुष महान ।
बन जावें आत्मीय जन, उत्तम बल यह
जान ।। 444 67. मिट्टी गुणानुसार
ज्यों, बदले वारि-स्वभाव ।
संगति से त्यों मनुज का, बदले
बुद्धि-स्वभाव ।। 452 68. मन
की शुद्धि मनुष्य को, देती है ऐश्वर्य ।

सत्संगति तो फिर उसे, देती सब यश

वर्य ।। 457 69. शुद्ध चित्तवाले स्वतः,

रहते साधु महान ।

सत्संगति फिर भी उन्हें,

करती शक्ति प्रदान ।। 458

2

10

70. चित्त-शुद्धि परलोक का, देती है

आनन्द ।

वही शुद्धि सत्संग से, होती और बुलन्द ।।

459

71. साथी कोई है नहीं, साधु-संग से

उच्च ।

बढ़ कर कुसंग से नहीं,

शत्रु हानिकर तुच्छ ।। 460

72. परख गुणों को फिर परख, दोषों को भी छान ।
उनमें बहुतायत परख, उससे कर पहचान ।। 504

73. महिमा या लघिमा सही, इनकी करने जांच ।
नर के निज निज कर्म ही, बनें कसौटी सांच ।। 505

74. परखे बिन विश्वास भी, औ' करके विश्वास ।
फिर करना सन्देह भी, देते हैं चिर नाश ।। 510

75. अपने को पाया धनी, तो फल हो यह प्राप्त ।
बन्धु-मंडली घिर रहे, यों रहना बन आप्त ।।

524

76. बिना छिपाये काँव कर, कौआ खाता भोज्य ।
जो हैं उसी स्वभाव के, पाते हैं सब भोग्य ।।

527

77. करुणा से है चल रहा, सांसारिक व्यवहार ।
जो नर उससे रहित हैं, केवल भू का भार ।। 572

78. मेल न हो तो गान से, तान करे क्या काम ।
दया न हो तो दृष्टि में, दृग आये क्या काम ।।

573

79. आभूषण है नेत्र का, करुणा का सद्भाव ।
उसके बिन जानो उसे, केवल मुख पर घाव ।। 575

80. रहने पर भी आँख के, जिनके हैं नहिं

आँख ।
यथा ईख भू में लगी, जिसके भी हैं आँख ।। 576

81. देख मिलाते गरल भी,
खा जाते वह भोग ।
वांछनीय दाक्षिण्य के, इच्छुक हैं जो लोग ।। 580

82. जब तम से आलस्य के, आच्छादित हो जाय ।
अक्षय दीप कुटुंब का, मंद मंद बुझ जाय ।। 601

83. जो चाहे निज वंश का, बना रहे उत्कर्ष ।
नाश करें आलस्य का, करते उसका धर्ष । 602

84. जब दुख-संकट आ पड़े, तब करना उल्लास ।

तत्सम कोई ना करे, भिड़ कर उसका नाश ।। 621

85. जो आवेगा बाढ़ सा, बुद्धिमान को कष्ट ।

मनोधैर्य से सोचते, हो जावे वह नष्ट ।। 622 86. विधिवश होता दुःख है, यों जिसको है ज्ञान ।

तथा न सुख की चाह भी, दुखी न हो वह प्राण ।। 628 87. सुख में सुख की चाह से, जो न करेगा भोग ।

दुःखी होकर दुःख में, वह न करेगा शोक ।। 629 88. यद्यपि संकट-ग्रस्त हों, जिनका निश्चल ज्ञान ।

निंद्य कर्म फिर भी सुधी, नहीं करेंगे जान ।।

654 89. जननी को भूखी

सही, यद्यपि देखा जाय ।
सज्जन-निंदित कार्य को,
तो भी किया न जाय ।। 656

टिप्पणी : - 80.

आंख—गांठ पर कीनोक जिससे अंकुआ निकलता है। दया ।

12

90. दोष वहन कर प्राप्त जो,
सज्जन को ऐश्वर्य ।
उससे अति दारिद्र्य ही, सहना उसको वर्य ।।
657

91. बिम्बित करता स्फटिक ज्यों,
निकट वस्तु का रंग ।
मन के अतिशय भाव को, मुख करता

बहिरंग ।। 706

92. मुख से बढ़कर बोधयुत, है क्या वस्तु विशेष ।
पहले वह बिम्बित करे, प्रसन्नता या द्वेष ।। 707

93. जिनसे मन मिलता नहीं, जीवन उनके संग ।
एक झोंपड़ी में यथा, रहना सहित भुजंग ।। 890

94. सक्षम की करना नहीं, क्षमता का अपमान ।
रक्षा हित जो कार्य हैं, उनमें यही महान ।। 891

95. है तो महानुभावता, विनयशील सब पर्व ।
अहम्मन्य हो तुच्छता, करती है

अति गर्व ।। 978

96. तिरस्कार करना नहीं, छोटा क़द अवलोक ।
चलते भारी यान में, अक्ष-आणि ज्यों लोग ।। 667

97. अमित हर्ष से मस्त हो, रहना असावधान ।
अमित क्रोध से भी अधिक, हानि करेगा जान ।। 531

98. कहना तो सबके लिये, रहता है आसान ।
करना जो जैसा कहे, है दुस्साध्य निदान ।। 664

99. कहना कुछ करना अलग, जिनकी है यह बान ।
उनकी मैत्री खायगी, सपने में भी जान ।। 819

100. संकल्पित सब वस्तुएँ, यथा किया संकल्प ।
संकल्पक पा जायगा, यदि वह

गार्हस्थ्य शतक

गृह का जयमंगल कहें,
गृहिणी की गुण-खान ।

उनका सद्भूषण कहें,
पाना सत्संतान ॥ 114-60

गार्हस्थ्य शतक

क्रम संख्या
क्र. सं. मूल में

101. इस जग में है जो गृही, धर्मनिष्ठ

यतिमान ।
देवगणों में स्वर्ग के, पावेगा सम्मान ।। 50
102. अच्युत रह निज धर्म पर, सबको चला सुराह ।
क्षमाशील गार्हस्थ्य है, तापस्य से अचाह ।। 48
103. भरण गृहस्थी धर्म का, जो भी करे गृहस्थ ।
साधकगण के मध्य वह, होता है अग्रस्थ ।। 47 104. पापभीरु हो धन कमा, बांट यथोचित अंश ।
जो भोगे उस पुरुष का, नष्ट न होगा वंश ।। 44 105. भोजन को जो बांट कर, किया करेगा भोग ।
उसे नहीं पीड़ित करे, क्षुधा भयंकर रोग ।। 227

106. पितर देव फिर अतिथि जन,

बन्धु स्वयं मिल पांच ।

इनके प्रति कर्तव्य का, भरण धर्म है सांच ।। 43

107. उनका रक्षक है गृही, जो होते हैं दीन ।

जो अनाथ हैं, और जो, मृतजन आश्रयहीन ।। 42 108. यदि पाती हैं नारियाँ, पति पूजा कर शान ।

तो उनका सुरधाम में, होता है बहुमान ।। 58

टिप्पणी :—102. अचाह-निष्काम ।
104. यथोचित-इतर तीनों आश्रमी
तथा पितर आदि में बांट कर ।

16

109. पूजे सती न देव को, पूज जगे निज कंत ।

उसके कहने पर, 'बरस', बरसे मेघ

तुरंत ।। 55 110. रक्षा करे सतीत्व की,
पोषण करती कांत ।
गृह का यश भी जो रखे, स्त्री है वह अश्रांत ।।
56

111. गुण-गुण
गृहिणी में न हो, गृह्य कर्म के अर्थ ।
सुसंपन्न तो
क्यों न हो, गृह-जीवन है व्यर्थ ।। 52 112.

गृहिणी रही सुधर्मिणी, तो क्या
रहा अभाव ।
गृहिणी नहीं सुधर्मिणी, किसका नहीं
अभाव ।। 53
113. जिसकी पत्नी को नहीं, घर के यश का
मान ।
नहिं निंदक के सामने,

गति शार्दूल समान ।। 59

114. गृह का जयमंगल कहें, गृहिणी की गुण-खान ।
उनका सद्भूषण कहें, पाना सत्सन्तान ।। 60

115. सात जन्म तक भी उसे, छू नहीं सकता ताप ।
यदि पावे सन्तान जो, शीलवान निष्पाप ।। 62

116. नन्हे निज सन्तान के, हाथ बिलोड़ा भात ।
देवों के भी अमृत का, स्वाद करेगा मात ।। 64

117. मुरली-नाद मधुर कहें, सुमधुर वीणा-गान ।
तुतलाना संतान का,

जो न सुना निज कान । 66

118. पुत्र जनन पर जो हुआ, उससे बढ़ आनन्द ।

माँ को हो जब वह सुने,

महापुरुष निज नन्द ।। 69

119. पिता करे उपकार यह, जिससे निज सन्तान ।

पंडित सभा-समाज में, पावे अग्रस्थान ।। 67

120. पुत्र पिता का यह करे, बदले में उपकार ।

'धन्य धन्य इसके पिता', यही कहे संसार ।। 70

121. अर्गल है क्या जो रखे, प्रेमी उर में प्यार ।

घोषण करती साफ़ ही, तुच्छ नयन-जल-धार ।। 71

122. सिद्ध हुआ प्रिय जीव का, जो तन से संयोग ।

मिलन-यत्न-फल प्रेम से, कहते हैं बुध लोग ।। 73

123. कीड़े अस्थिविहीन को, झुलसेगा ज्यों घर्म ।

प्राणी प्रेमविहीन को, भस्म करेगा धर्म ।। 77

124. नीरस तरु मरु भूमि पर, क्या हो किसलय-युक्त ।

गृही जीव वैसा समझ, प्रेमरहित मन-युक्त ।। 78

125. दिन दिन आये अतिथि का, करता जो सत्कार ।

वह जीवन दारिद्रय का, बनता नहीं शिकार ।। 83

126. मुख प्रसन्न हो जो करे, योग्य अतिथि-सत्कार ।

उसके घर में इन्दिरा, करती सदा

बहार ।। 84 127. खिला-पिला कर अतिथि

को, अन्नशेष जो खाय ।
ऐसों के भी खेत को, काहे बोया
जाय ।। 85 128. सूंघा 'अनिच्च' पुष्प को,

तो वह मुरझा जाय ।

मुंह फुला कर ताकते, सूख अतिथि-मुख जाय ।।
90

टिप्पणी :—123 धर्म-धर्म देव । 128
अनिच्च-एक तरह का अति मृदु फूल ।

3

18

129. होगा ह्रास अधर्म का, सुधर्म का
उत्थान ।
चुन चुन कर यदि शुभ वचन, कहे मधुरता

सान ।। 96

130. मधुर वचन का मधुर फल, जो भोगे खुद आप ।

कटुक वचन फिर क्यों कहे, जो देता संताप ।। 99

131. उपकृत हुए बिना करे, यदि कोई उपकार ।

दे कर भू सुर-लोक भी, मुक्त न हो आभार ।। 101

132. अति संकट के समय पर, किया गया उपकार ।

भू से अधिक महान है, यद्यपि अल्पाकर ।। 102

133. उपकृति तिल भर ही हुई, तो भी उसे सुजान ।

मानें ऊँचे ताड़ सम, सुफल इसी में जान ।। 104

134. जिसने दुःख मिटा दिया, उसका स्नेह स्वभाव ।
सात जन्म तक भी स्मरण, करते महानुभाव ।। 107

135. न्यायनिष्ठ की संपदा, बिना हुए क्षयशील ।
वंश वंश का वह रहे, अवलंबन स्थितिशील ।। 112

136. कोई ईमानदार हैं, अथवा बेईमान ।
उन उनके अवशेष से, होती यह पहचान ।। 114

137. 'सर्वनाश मेरा हुआ', यों जानो निर्धार ।
चूक न्याय-पथ यदि हुआ, मन में बुरा विचार ।। 116

138. सम रेखा पर हो तुला, ज्यों तोले सामान ।
भूषण महानुभाव का, पक्ष न लेना मान ।। 118

19

139. यदि रखते पर-माल को, अपना माल समान ।
वणिक करे वाणिज्य तो, वही सही तू जान ।। 120

140. संयम देता मनुज को, अमर लोक का वास ।
झोंक असंयम नरक में, करता सत्यानास ।। 121
141. बिना टले निज धर्म से, जो हो संयमशील ।

पर्वत से भी उच्चतर, होगा उसका डील ।। 124

142. संयम उत्तम वस्तु है, जन के लिये अशेष ।
वह भी धनिकों में रहे,
तो वह धन सुविशेष ।। 125

143. पंचेन्द्रिय-निग्रह किया, कछुआ सम इक जन्म ।
तो उससे रक्षा सुदृढ़, होगी सातों जन्म ।। 126

144. क्रोध दमन कर जो हुआ, पंडित यमी समर्थ ।
धर्म-देव भी जोहता, बाट भेंट के अर्थ ।। 130

145. संभव है फिर अध्ययन, भूल

गया यदि वेद ।
आचारच्युत विप्र के, होगा कुल
का छेद ।। 134

146. सदाचार के बीज
से; होता सुख उत्पन्न ।
कदाचार से ही सदा, होता मनुज
विपन्न ।। 138

147. जिनको लोकाचार की, अनुगति का
नहिं ज्ञान ।
ज्ञाता हों सब शास्त्र के,
जानो उन्हें अजान ।। 140

148. क्या होगा उसको अहो, रखते विभव
अनेक ।
यदि रति

हो परदार में, तनिक न बुद्धि विवेक ॥ 144

20

149. परपत्नी-रत जो हुआ,
सुलभ समझ निश्शंक ।
लगे रहे चिर काल तक, उसपर
अमिट कलंक ॥ 145

150. पाप, शत्रुता और भय, निंदा
मिलकर चार ।
ये उसको छोड़ें नहीं, जो करता
व्यभिचार ॥ 146

151. परनारी नहिं ताकना, है
धीरता महान ।
धर्म मात्र नहिं संत का, सदाचरण
भी जान ॥ 148

152. क्षमा क्षमा कर ज्यों धरे, जो
खोदेगा फोड़ ।
निंदक को करना क्षमा, है

सुधर्म बेजोड़ ।। 151

153. प्रतिकारी का हो मज़ा, एक दिवस में अन्त ।
क्षमाशील को कीर्ति है, लोक अन्त पर्यन्त ।। 156

154. यद्यपि कोई आपसे, करता अनुचित कर्म ।
अच्छा उसपर कर दया, करना नहीं अधर्म ।। 157

155. अहंकार से ज़्यादती, यदि तेरे विपरीत ।
करता कोई तो उसे, क्षमा भाव से जीत ।। 158

156. संन्यासी से अधिक हैं, ऐसे गृही पवित्र ।
सहन करें जो नीच के, कटुक वचन अपवित्र ।। 159

157. अनशन हो जो तप करें, यद्यपि साधु महान ।

पर-कटुवचन-सहिष्णु के, पीछे पावें स्थान ।। 160

158. धर्म-अर्थ के लाभ की, जिसकी है नहिं चाह ।

पर-समृद्धि से खुश न हो, करता है वह डाह ।। 163

टिप्पणी :—152. क्षमा-धरती ।

159. दान देखकर जो जले, उसे सहित परिवार ।

रोटी कपड़े को तरस, मिटते लगे न

बार ।। 166 160. जलनेवाले से स्वयं, जलकर रमा अदीन ।

अपनी ज्येष्ठा के उसे, करती वही अधीन ।। 167 161. ईर्ष्या जो है पापिनी, करके श्री का नाश ।

नरक अग्नि में झोंक कर, करती सत्यानास ।। 168 162. सुख-समृद्धि उनकी नहीं, जो हों ईर्ष्यायुक्त ।

सुख-समृद्धि की इति नहीं, जो हों ईर्ष्यामुक्त ।। 170 163. न्याय-बुद्धि को छोड़ यदि, हो पर-धन का लोभ ।

होकर नाश कुटुंब का, होगा दोषारोप ।। 171

164. नश्वर सुख के लोभ में, वे न करें दुष्कृत्य ।

जिनको इच्छा हो रही, पाने को सुख नित्य ।। 173 165. जो हैं इन्द्रियजित तथा, ज्ञानी भी अकलंक ।

दारिदवश भी लालची, होते नहीं अशंक ।। 174

166. तीखे विस्तृत ज्ञान से, क्या होगा उपकार ।

लालचवश सबसे करे, यदि अनुचित व्यवहार ।। 175 167. निज धन का क्षय हो नहीं, इसका क्या सदुपाय ।

अन्यों की संपत्ति का, लोभ किया नहिं जाय ।। 178

168. निर्लोभता ग्रहण करें, धर्म मान धीमान ।

श्री पहुँचे उनके यहाँ, युक्त काल थल जान ।। 179

टिप्पणी :—160. ज्येष्ठा—अलक्ष्मी ।

169. धन पाकर आग्रह सहित, जो नहिं करते लोभ ।

धन खोकर क्या खिन्न हो, कभी करेंगे क्षोभ ।।

170. अविचारी के लोभ से, होगा उसका अन्त ।
लोभ-हीनता-विभव से, होगी विजय अनन्त ।। 180

171. नाम न लेगा धर्म का, करे अधार्मिक काम ।
फिर भी अच्छा यदि वही, पाये अपिशुन नाम ।। 181

172. चुगली खाकर क्या जिया, चापलूस हो साथ ।
भला, मृत्यु हो, तो लगे, शास्त्र-उक्त फल हाथ ।। 183

173. मित्रों के भी दोष का, घोषण जिनका धर्म ।
जाने अन्यों के प्रति, क्या-क्या करें कुकर्म ।। 188

174. क्षमाशीलता धर्म है, यों करके सुविचार ।
क्या ढोती है भूमि भी, चुगलखोर

का भार ॥ 189

175. निष्फल शब्द अगर कहे, कोई चरित्रवान ।
हो जावे उससे अलग, कीर्ति तथा सम्मान ॥ 195

176. जिसको निष्फल शब्द में, रहती है आसक्ति ।
कह ना तू उसको मनुज, कहना थोथा व्यक्ति ॥ 196

177. पाप-कर्म दुखजनक हैं, यह है उनकी रीत ।
पावक से भीषण समझ, सो होना भयभीत ॥ 202

178. विस्मृति से भी तर नहीं, सोचे पर की हानि ।
यदि सोचे तो धर्म भी, सोचे उसकी हानि ॥ 204

23

179. 'निर्धन हूँ मैं,'
यों समझ, करे न कोई पाप ।
अगर किया तो फिर मिले,

निर्धनता-अभिशाप ।। 205 180. दुख से यदि दुष्कर्म के, बचने की है राय ।

अन्यों के प्रति दुष्टता, कभी नहीं की जाय ।। 206 181. अति भयकारी शत्रु से, संभव है बच जाय ।

पाप-कर्म की शत्रुता, पीछा किये सताय ।। 207 182. कोई अपने आपको, यदि करता है प्यार ।

करे नहीं अत्यल्प भी, अन्यों का अपचार ।। 209 183. उपकारी नहिं चाहते, पाना प्रत्युपकार ।

बादल को बदला भला, क्या देता संसार ।। 211

184. पानी भरा तड़ाग ज्यों, आवे जग का काम ।

महा सुधी की संपदा, है जन-मन-सुख-धाम ।। 215

185. उपकारी को है नहीं, दरिद्रता की सोच ।

'मैं कृतकृत्य नहीं हुआ,' उसे यही संकोच ॥
219

186. लोकोपकारिता किये, यदि होगा ही नाश ।

अपने को भी बेच कर, क्रय-लायक वह नाश ॥
220

187. देना दान ग़रीब को, प्रत्याशा प्रतिदान की,

188. 'दीन-हीन हूँ' ना कहे, केवल प्राप्य कुलीन में,

189. क्षुधा-नियंत्रण जो रहा,

क्षुधा-निवारक शक्ति के,
है यथार्थ में दान।
है अन्य में निदान ॥ 221

•

करता है यों दान।
ऐसी उत्तम बान ॥ 223

तपोनिष्ठ की शक्ति।
पीछे ही वह शक्ति ॥ 225

190. धन-संचय कर खो रहा, जो निर्दय धनवान ।
देकर होते हर्ष का, क्या उसको नहिं ज्ञान ।। 228

191. अर्थ-वृद्धि के भाग्य से, हो आलस्य-अभाव ।
अर्थ-नाश के भाग्य से, हो आलस्य स्वभाव ।। 371

192. अर्थ-क्षयकर भाग्य तो, करे बुद्धि को मन्द ।
अर्थ-वृद्धिकर भाग्य तो, करे विशाल अमन्द ।। 372

193. निंदा का डर है जिन्हें, तिल भर निज अपराध ।
होता तो बस ताड़ सम, मानें उसे अगाध ।। 433

194. दोष उपस्थिति पूर्व ही, किया न जीवन रक्ष ।
तो वह मिटता है, यथा, भूसा अग्नि समक्ष ।। 435

195. श्रेष्ठ समझ कर आपको, कभी न कर अभिमान ।
चाह न हो उस कर्म की, जो न करे कल्याण ।। 439

196. मधुर वचन जो बोलता, करता भी है दान ।
बन्धुवर्ग के वर्ग से, घिरा रहेगा जान ।। 525

197. महादान करते हुए, जो है क्रोध-विमुक्त ।
उसके सम भू में नहीं, बन्धुवर्ग से युक्त ।। 526

198. 'देह दुःख का लक्ष्य तो, होती है' यों जान ।
क्षुब्ध न होते दुःख से, जो हैं, पुरुष महान ।। 627

199. निंदा बिन जो जी रहा, जीवित

वही सुजान ।

कीर्ति बिना जो जी रहा, उसे मरा ही जान ।। 240

200. ह्रास बने यशवृद्धिकर, मृत्यु बने अमरत्व ।

ज्ञानवान बिन और में, संभव न यह महत्व ।। 235

समाज-नीति शतक

जो जीवित हैं हल चला,

उनका जीवन धन्य ।

झुक कर खा पी कर चलें,

उनके पीछे अन्य ॥ 204-1033

समाज-नीति शतक

201. सभी मनुज हैं जन्म से, होते एक समान ।
गुण-विशेष फिर सम नहीं, कर्म-भेद से जान ।। 972

202. छोटे नहिं होते बड़े, यद्यपि स्थिति है उच्च ।
निचली स्थिति में भी बड़े, होते हैं नहिं तुच्छ ।। 973

203. बना रहेगा यदि सदा, लक्ष्य मात्र का ध्यान ।
अपने इच्छित वस्तु को, पाना है आसान ।। 540

204. जो जीवित हैं हल चला, उनका जीवन धन्य ।
झुक कर खा पी कर चलें, उनके पीछे

अन्य ।। 1033 205. जो कृषि की क्षमता बिना, करते धंधे अन्य ।

कृषक सभी को वहन कर, जगत-धुरी सम गण्य ।। 1032

206. उत्तम कुल में जन्म औ,' प्रेम-पूर्ण व्यवहार ।

दोनों शिष्टाचार के, हैं ही श्रेष्ठ प्रकार ।। 992

207. न हो देह के मेल से, श्रेष्ठ जनों का मेल ।

आत्माओं के योग्य तो, है संस्कृति का मेल ।। 993

208. नीति धर्म को चाहते, जो करते उपकार ।

उनके शिष्ट स्वभाव को, सराहता संसार ।। 994

209. हँसी-खेल में भी नहीं,
निंदा करना इष्ट ।
पर-स्वभाव ज्ञाता रहें, रिपुता में भी शिष्ट ।। 995

28

210. शिष्टों के आधार पर, टिकता है संसार ।
उनके बिन तो वह मिले, मिट्टी में निर्धार ।। 996

211. सुप्रसन्न मुख प्रिय वचन,
निंदा-वर्जन दान ।
सच्चे श्रेष्ठ कुलीन हैं, चारों का संस्थान ।। 953

212. अंकुर करता है प्रकट, भू के गुण की बात ।
कुल का गुण कुल-जात की, वाणी

करता ज्ञात ।। 959

213. अन्न-वस्त्र इत्यादि हैं, सब के लिये समान ।
सज्जन की है श्रेष्ठता, होना लज्जावान ।। 1012

214. सभी प्राणियों के लिये, आश्रय तो है देह ।
रखती है गुण-पूर्णता, लज्जा का शुभ गेह ।। 1013

215. लज्जित हैं जो देख निज, तथा पराया दोष ।
उनको कहता है जगत, 'यह लज्जा का कोष' ।। 1015

216. कठपूतली में सूत्र से, है जीवन-आभास ।
त्यों है लज्जाहीन

में, चैतन्य का निवास ।। 1020

217. जो चाहे अपना भला, पकड़े लज्जा-रीत ।
जो चाहे कुल-कानि को, सबसे रहे विनीत ।। 960

218. हर्षप्रद होता मिलन, चिन्ताजनक वियोग ।
विद्वज्जन का धर्म है, ऐसा गुण-संयोग ।। 394

219. पीड़ा तो देती नहीं, जब होती है भंग । सो मूढ़ों की मित्रता, है अति मधुर प्रसंग ।। 839

220. प्राज्ञ-मित्रता यों बढ़े, यथा दूज का चांद ।
मूर्ख-मित्रता यों घटे, ज्यों पूनो के बाद ।। 782 221. करते करते अध्ययन, अधिक सुखद ज्यों ग्रंथ ।
परिचय बढ़ बढ़ सुजन की, मैत्री दे आनंद ।। 783 222. हँसी-खेल करना नहीं, मैत्री का उपकार ।
आगे बढ़ अति देख कर, करना है फटकार ।। 784 223. परिचय औ' संपर्क की, नहीं ज़रूरत यार ।
देता है भावैक्य ही, मैत्री का अधिकार ।। 785
224. केवल मुख खिल जाय तो, मैत्री कहा न

जाय ।

सही मिलता है वही, जिससे जी खिल जाय ।। 786

225. चला सुपथ पर मित्र को, हटा कुपथ से दूर ।

सह सकती दुख विपद में, मैत्री वही ज़रूर ।। 787

226. ज्यों धोती के खिसकते, थाम उसे ले हस्त ।

मित्र वही जो दुःख हो, तो झट कर दे पस्त ।। 788

227. गुण को कुल को दोष को, जितने बंधु अनल्प ।

उन सबको भी परख कर, कर मैत्री का कल्प ।। 793 228. झिड़की दे कर या रुला, समझावे व्यवहार ।

ऐसे समर्थ को परख, मैत्री कर

स्वीकार ।। 795

229. होने पर भी विपद के, बड़ा लाभ है एक ।

मित्र-खेत सब मापता, मान-दंड वह एक ।। 796

30

230. ऐसे कर्म न सोचिये, जिससे घटें उमंग ।

ऐसे मित्र न चाहिये, दुख में छोडें संग ।। 798

231. विपद समय जो बन्धु जन, साथ छोड़ दें आप ।

मरण समय भी वह स्मरण, दिल को देगा ताप ।। 799

232. निर्मल चरित्रवान की, मैत्री लेना जोड़ ।

कुछ दे सही अयोग्य की, मैत्री

देना छोड़ ।। 800

233. चिरपरिचित घन मित्र से, यद्यपि हुआ अनिष्ट ।
मर्यादी छोड़ें नहीं, वह मित्रता घनिष्ठ ।। 806

234. स्नेही स्नेह-परंपरा, जो करते निर्वाह ।
मित्र करे यदि हानि भी, तजें न उसकी चाह ।। 807

235. पा या खो कर क्या हुआ, अयोग्य का सौहार्द ।
जो मैत्री कर स्वार्थवश, तज दे जब नहिं स्वार्थ ।। 812

236. मित्र बने जो गणन कर, स्वार्थ-लाभ का मान ।
धन-गाहक गणिका तथा, चोर एक सा जान ।। 813

237. अनभ्यस्त हय युद्ध में, पटक चले ज्यों भाग ।

ऐसों के सौहार्द से, एकाकी बड़भाग ।। 814

238. तुच्छ मित्रता विपद में, जो देती न सहाय ।

ना होने में है भला, होने से भी हाय ।। 815

239. अति घनिष्ठ बन मूर्ख का, हो जाने से इष्ट ।

समझदार की शत्रुता, लाखों गुना वरिष्ठ ।। 816

टिप्पणी :—237 बड़भाग - बड़ा भाग्य !

240. यों असाध्य कह साध्य को, जो करता न

सहाय ।
चुपके से उस ढोंग की, मैत्री छोड़ी जाय ।। 818
241. घर पर मैत्री पालते, सभा-मध्य धिक्कार ।
जो करते वे तनिक भी, निकट न आवें यार ।। 820 242. बंधु सदृश पर बंधु नहिं, उनकी मैत्री बान । है परिवर्तनशील ही, नारी-चित्त समान ।। 822

243. सद्ग्रंथों का अध्ययन, यद्यपि किया अनेक ।
शत्रु कभी होंगे नहीं, स्नेह-मना सविवेक ।। 823
244. मुख पर मधुर हँसी सहित, हृदय वैर से पूर ।
ऐसे लोगों से डरो, ये हैं वंचक क्रूर ।। 824

245. जिससे मन मिलता नहीं,
उसका सुन वच मात्र ।
किसी विषय में मत समझ,
उसे भरोसा-पात्र ।। 825

246. यद्यपि बोलें मित्र सम, हितकर
वचन गढ़ंत ।
शत्रु-वचन की
व्यर्थता, होती प्रकट तुरंत ।। 826

247. सूचक है
आपत्ति का, धनुष नमन की बान ।
सो रिपु-वचन-विनम्रता, निज हितकर मत
जान ।। 827

248. जुड़े हाथ में शत्रु के, छिप
रहता हथियार ।
वैसी ही उसकी रही, रुदन-अश्रु-जल-धार ।।

249. शत्रु मित्र जैसा बने, जब आवे यह काल ।
मुख पर मैत्री प्रकट कर, मन से उसे निकाल ।। 830

32

250. सात जन्म जो यातना, मिले नरक के गर्त्त ।
मूढ़ एक ही में बना, लेने में सुसमर्थ ।। 835

251. सुधी-सभा में मूढ़ का, घुसना है यों खैर ।
बिन धोये रखना यथा, स्वच्छ सेज पर पैर ।। 840

252. हीन-बुद्धि किसको कहें, यदि पूछोगे बात ।
स्वयं मान 'हम हैं सुधी', भ्रम में पड़ना ज्ञात ।।

253. अपठित में ज्यों पठित का, व्यंजित करना भाव ।
सुपठित में भी दोष बिन, जनमे संशय-भाव ।। 845

254. सब जीवों में फूट ही, कहते हैं बुध लोग ।
अनमिल-भाव-अनर्थ का, पोषण करता रोग ।। 851

255. कोई अनमिल भाव से, कर्म करे यदि पोच ।
अहित न करना है भला, भेद-भाव को सोच ।। 852

256. धनु-हल-धारी कृषक से, करो भले ही वैर ।
वाणी-हल-धर कृषक से, करना छोड़ो वैर ।। 872

257. करना जो असमर्थ का, समर्थ का

नुक़सान ।

है वह यम को हाथ

से, करना ज्यों आह्वान ।। 894

258. डरने की जो बान है, स्त्री से दब कर नीच ।

सदा रही लज्जाजनक, भले जनों

के बीच ।। 903

259. पत्नी-भीरु सदा डरे, करने

से वह कार्य ।

सज्जन लोगों के

लिये, जो होते सत्कार्य ।। 905

260. स्त्री की आज्ञा पालता, जो पौरुष निर्लज्ज ।

उससे बढ़ कर श्रेष्ठ है, स्त्री का स्त्रीत्व

सलज्ज ।। 907

261. पण-स्त्री आलिंगन रहा, यों झूठा ही जान ।
ज्यों लिपटे तम-कोष्ठ में, मुरदे से अनजान ।। 913

262. रहता है परमार्थ में, जिनका मनोनियोग ।
अर्थ-अर्थिनी-तुच्छ सुख, करते नहिं वे भोग ।। 914

263. जो स्त्री है मायाविनी, उसका भोग विलास ।
अविवेकी जन के लिये, रहा मोहिनी-पाश ।। 918

264. वेश्या का कंधा मृदुल, भूषित जो है खूब ।
मूर्ख नीच को नरक है, जिसमें जाता डूब ।। 919

265. द्वैध-मना व्यभिचारिणी, मद्य, जुए

का खेल ।
लक्ष्मी से जो त्यक्त हैं, उनका
इनसे मेल ।। 920

266. जो मधु पर आसक्त हैं, खोते हैं सम्मान ।
शत्रु कभी डरते नहीं, उनसे
कुछ भय मान ।। 921

267. मद्य न पीना, यदि पिये, वही
पिये सोत्साह ।
साधु-जनों के मान की,
जिसे नहीं परवाह ।। 922

268. माँ के सम्मुख भी
रही, मद-मत्तता खराब ।

तो फिर सम्मुख साधु के, कितनी बुरी शराब ।। 923

269. जग-निंदित अति दोषयुत, जो हैं शराबखोर ।
उनसे लज्जा-सुंदरी, मुंह लेती है मोड़ ।। 924

टिप्पणी :—261 पण-स्त्री - वेश्या । तम-कोष्ठ— अन्धकार से पूर्ण कमरा ।
5

270. जो लुक-छिप मधु पान कर, खोते होश-हवास ।
भेद जान पुर-जन सदा, करते हैं परिहास ।। 927

271. मद्यप का उपदेश से, होना होश-हवास ।

दीपक ले जल-मग्न की, करना
यथा तलाश ।। 929

272. चाह जुए की हो नहीं, यद्यपि
जय स्वाधीन ।
जय भी तो कांटा सदृश, जिसे
निगलता मीन ।। 931

273. पासा फेंक सदा रहा, यदि कर धन
की आस ।
उसका धन औ' आय सब, चलें शत्रु
के पास ।। 933

274. करता यश का नाश है, दे कर सब
दुख-जाल ।
और न कोई द्यूत सम, बनायगा
कंगाल ।। 934

275. जुआरूप ज्येष्ठा जिन्हें, मुँह में
लेती डाल ।
उन्हें न मिलता पेट भर, भोगें
दुःख कराल ।। 936

276. द्यूत-भूमि में काल सब, जो करना है वास। करता पैतृक धन तथा, श्रेष्ठ गुणों का नाश ॥ 937

277. रोटी कपड़ा संपदा, विद्या औ सम्मान।
पांचों नहिं उनके यहाँ, जिन्हें जुए की बान ॥ 939

278. खादित का पचना समझ, फिर दे भोजन-दान।
तो तन को नहिं चाहिये, कोई औषध-पान ॥ 942

279.
जीर्ण हुआ तो खाइये, जान उचित परिमाण

। देहवान हित

है वही, चिरायु का सामान ।। 943

35

280. करता पथ्याहार का, संयम से यदि भोग ।

तो होता नहिं जीव को, कोई दु:खद रोग ।। 945

281. भला समझ मित भोज का, जीमे तो सुख-वास ।

वैसे टिकता रोग है, अति पेटू के पास ।। 946

282. जाठराग्नि की शक्ति का, बिना किये सुविचार ।

यदि खाते हैं अत्यधिक, बढ़ते रोग अपार ।। 947

283. ठीक समझ कर रोग क्या, उसका समझ

निदान ।
समझ युक्ति फिर शमन का, करना यथा विधान ।। 948

284. रोगी का वय, रोग क्या, काल तथा विस्तार ।
सोच समझ कर वैद्य को, करना है उपचार ।। 949

285. रोगी वैद्य दवा तथा, तीमारदार संग ।
चार तरह के तो रहे, वैद्य शास्त्र के अंग ।। 950

286. हैं मनुष्य के सदृश ही, नीच लोग भी दृश्य ।
हमने तो देखा नहीं, ऐसा जो सादृश्य ।। 1071

287. नीच लोग हैं देव सम, क्योंकि निरंकुश जीव ।
वे भी करते आचरण, मनमानी बिन सींव ।। 1073

288. नीचों के आचार का,
भय ही है आधार ।
भय बिन भी कुछ तो रहे, यदि हो
लाभ-विचार ।। 1075

289. नीच मनुज ऐसा रहा,
जैसा पिटता ढोल ।
स्वयं सुने जो भेद हैं, ढो अन्यों को खोल ।।
1076

36

290. छोटों के मन में नहीं, होता
यों सुविचार ।
पावें गुण नर श्रेष्ठ का, कर
उनका सत्कार ।। 976

291. नीच लोग किस योग्य हों, आयेंगे

क्या काम ।

संकट हो तो झट स्वयं,

बिक कर बनें गुलाम ।। 1080

292. यद्यपि हैं रेती सदृश, तीक्षण

बुद्धि-निधान ।

मानव-संस्कृति के बिना, नर हैं

वृक्ष समान ।। 997

293. जीवित रहने के लिये, यद्यपि

हैं अनिवार्य ।

फिर भी जो कुल-हानिकर, तज

देना वे कार्य ।। 961

294. जो हैं पाना चाहते, कीर्ति

सहित सम्मान ।

यश-हित भी करते नहीं, जो

कुल-हित अपमान ।। 962

295. सविनय रहना चाहिये, रहते

अति संपन्न ।

तन कर रहना चाहिये, रहते बड़ा विपन्न ।। 963

296. गिरते हैं जब छोड़कर, निज सम्मानित स्थान ।

नर बनते हैं यों गिरे, सिर से बाल समान ।। 964

297. अल्प घुंघची मात्र भी, करते जो दुष्काम ।

गिरि सम ऊँचे क्यों न हों, होते हैं बदनाम ।। 965

298. निंदक का अनुचर बने, जीवन से भी हेय ।
'ज्यों का त्यों रह मर गया', कहलाना है श्रेय ।। 967

299. बाल कटा तो त्याग दे, चमरी-मृग निज प्राण ।

उसके सम नर जान दें,

रक्षा-हित निज मान ।। 969

300. जो मानी जीते नहीं, होने पर अपमान ।
उसके यश को पूज
कर, लोक करे गुण-गान ।। 970

राजनीति शतक

होते नहीं विभिन्न दल,

नाशक अन्तर्वैर ।
नृप-कंटक खूनी नहीं,
वही राष्ट्र है, खैर ॥ 397-735

राजनीति शतक

क्रम संख्या
क्र. सं. मूल में

301. सैन्य राष्ट्र धन मित्रगण, दुर्ग अमात्य षडंग ।
राजाओं में सिंह है, जिसके हों ये संग ॥ 381

302. दानशीलता निडरपन, बुद्धि तथा उत्साह ।

इन चारों से पूर्ण हो, स्वभाव से नरनाह ।। 382

303. कर उपाय धन-वृद्धि का, अर्जन भी कर खूब ।

रक्षण, फिर विनियोग में, सक्षम जो वह भूप ।। 385

304. दर्शन जिसके सुलभ हैं, और न वचन कठोर ।

ऐसे नृप के राज्य की, शंसा हो बरजोर ।। 386

305. नीति बरत कर भूप जो, करता है जन-रक्ष ।

प्रजा मानती है उसे, ईश-तुल्य प्रत्यक्ष ।। 388

306. जिस नृप में वच कर्ण कटु, सहने का संस्कार ।

उसकी छत्रच्छांह में, टिकता है संसार ।। 389

307. प्रजा-सुरक्षण प्रिय वचन, तथा सुशासन दान ।
इन चारों से पूर्ण नृप, महीप दीप समान ।। 390

308. सबसे निर्दाक्षिण्य हो, सोच दोष की रीति ।
उचित दंड निष्पक्ष रह, देना ही है नीति ।। 541

309. जीवित हैं ज्यों जीव सब, ताक मेघ की ओर ।
प्रजा ताक कर जी रही, राजदंड की ओर ।। 542

310. ब्राह्मण पोषित वेद औ',
इनका स्थिर आधार है,

311. प्रजा-पाल रहते हुए,
पाँव पकड़ उस भूप के,

उसमें प्रस्तुत धर्म ।
राजदंड का धर्म ।। 543

ढोता शासन-भार ।

टिके रहे संसार ।। 544

312. है जिस नृप के देश में, शासन सुनीतिपूर्ण ।
साथ मौसमी वृष्टि के, रहे उपज भी पूर्ण ।। 545

313. न्याय करे नहिं सोच कर, तथा भेंट भी कष्ट ।
ऐसा नृप होकर पतित, होता खुद ही नष्ट ।। 548

314. यथा निराता खेत को, रखने फ़सल किसान ।
मृत्यु-दंड नृप का उन्हें, जो हैं दुष्ट महान ।। 550

315. भाला लेकर हो खड़े,

डाकू की ज्यों मांग ।

राजदंडयुत की रही, त्यों भिक्षा

की मांग ।। 552

316. दिन दिन नीति विचार कर, नृप न करे

यदि राज ।

ह्रासोन्मुख होता रहे,

दिन दिन उसका राज ।। 553

317. उत्पीड़ित जन रो पड़े,
जब वेदना अपार ।

श्री का नाशक शस्त्र है, क्या

न नेत्र-जल-धार ।। 555

318. अति दुःखद है सधनता, रहने से धनहीन ।
यदि अन्यायी राज के, रहना पड़े अधीन ।। 558

319. यदि राजा शासन करे, राजधर्म से चूक ।

41

320. ब्राह्मण भूलें शास्त्र सब, दूध नहीं दे गाय ।
यदि जन-रक्षक भूप से, रक्षा को नहि जाय ।। 560

321. राजश्री चिरकाल यदि, रखना चाहें साथ ।
दिखा दंड की उग्रता, करना मृदु आघात ।। 562

322. यदि भयकारी कर्म कर, करे प्रजा को त्रस्त ।
निश्चित जल्दी क्रूर वह, हो जावेगा अस्त ।। 563

323. जिस नृप की दुष्कीर्ति हो, 'राजा है अति क्रूर' ।
आयु अल्प हो जल्द वह, होगा नष्ट जरूर ।। 564

324. कटु भाषी यदि हो तथा, दया-दृष्टि से हीन।

विपुल विभव नृप का मिटे, तत्क्षण हो स्थिति हीन।। 566

325. कटु भाषण नृप का तथा, देना दंड अमान।

शत्रु-दमन की शक्ति को, घिसती रेती जान।। 567

326. सचिवों की न सलाह ले, फिर होने पर कष्ट।

आग-बबूला नृप हुआ, तो श्री होगी नष्ट।। 568

•

327. हाथ खींचना दान से, रखना मिथ्या मान।

नृप का अति दाक्षिण्य भी, मानो दोष अमान।। 432

328. दोष देखकर डांटने, जब

हैं मित्र सुयोग्य।

तब

नृप का करने अहित, कौन शत्रु है योग्य ॥
447

329. डांट-डपटते मित्र की,

रक्षा बिन नरकंत।

शत्रु बिना भी हानिकर, पा जाता है अंत ॥ 448
6

42

330. बहुत जनों की शत्रुता, करने में जो
हानि।

उससे बढ़ सत्संग को, तजने में है
हानि ॥ 450

331. टूट पड़े जो शत्रु पर, बिन सोचे सब

मर्म ।

शत्रु-गुल्म हित तो बने, क्यारी ज्यों वह कर्म ।। 465 332. निज-बल रिपु-बल कार्य-बल, साथी-बल भी जान ।

सोच-समझ कर चाहिये, करना कार्य निदान ।। 471

333. बोध नहीं निज शक्ति का, वश होकर उत्साह ।

कार्य शुरू कर बीच में, मिटे कई नरनाह ।। 473

334. दिन में उल्लू पर विजय, पा लेता है काक ।

नृप जिगीषु को चाहिये, उचित समय की ताक ।। 481

335. जिनको निश्चित रूप से, विश्व विजय की चाह ।

उचित समय की ताक में,
तो हैं बेपरवाह ।। 485

336. रहता है यों सिकुड़ नृप, रखते हुए बिसात ।
ज्यों मेढ़ा पीछे हटे, करने को आघात ।। 486

337. रिपू को असमय देखकर, सिर पर ढो सुंभाल ।
सिर के बल गिर वह मिटे,
आते अंतिम काल ।। 488

338. बक सम रहना सिकुड़ कर, जब करना नहिं वार ।
चोंच मार उसकी यथा, पाकर समय, प्रहार ।। 490

339.

निर्बल भी बनकर सबल, पावें जय-सम्मान
।

यदि रिपु पर धावा करें,

खोज सुरक्षित स्थान ।। 493

43

340. गहरे जल में मगर की, अन्यों पर
हो जीत ।

जल से बाहर अन्य सब, पावें जय
विपरीत ।। 495

341. भारी रथ दृढ़ चक्रयुत, चले न
सागर' पार ।

सागरगामी पोत भी, चले न भू पर
तार ।। 496

342. यदि पाता लघु सैन्ययुत, आश्रय स्थल
अनुकूल ।

उसपर चढ़ बहु सैन्ययुत, होगा नष्ट

समूल ।। 498

343. सुदृढ दुर्ग साधन बड़ा, हैं नहिं रिपु के पास ।
फिर भी उसके क्षेत्र में, भिड़ना व्यर्थ-प्रयास ।। 499

344. जिस निर्भय गजराज के, दंतलग्न बरछैत ।
गीदड़ भी मारे उसे, जब दलदल में क़ैद ।। 500

345. बलवानों से मत भिड़ो, करके उनसे वैर ।
कमज़ोरों की शत्रुता, सदा चाहना, खैर ।। 861

346. प्रेम रहित निज बल रहित, सबल सहाय न पास ।
कर सकता है किस तरह,

शत्रु-शक्ति का नाश ।। 862

347. अनमिल है कंजूस है, कायर और अजान ।

उसपर जय पाना रहा, रिपु को अति आसान ।। 863

348. आँख बनाकर सचिव को, ढोता शासन-भार ।

सो नृप चुन ले सचिव को, करके सोच-विचार ।। 445

349.

राज-भृत्य यदि विकृत नहिं, विकृत न होगा राज ।

रोज़ परखना चाहिये, नृप को उसका काज ।। 520

350. कदम बढ़ा कर विष्णु ने, जिसे किया था व्याप्त ।
वह सब आलसहीन नृप, करे एकदम प्राप्त ।। 610

351. सब पर जो जो घटित हों, सब बातें सब काल ।
राजधर्म है जानना, चारों से तत्काल ।। 582

352. पता लगा कर भेद का, लाया यदि इक चार ।
भेद लगा फिर अन्य से, तुलना कर स्वीकार ।। 588

353. चर चर को जाने नहीं, यों कर शासन-कर्म ।
सत्य मान जब तीन चर, कहें एक सा मर्म । 589

354. खुले आम जासूस का, करना मत सम्मान ।

अगर किया तो भेद को, प्रकट किया खुद जान ।। 590

355. साधन काल उपाय औ', कार्य-सिद्धि दुस्साध्य ।

इनका श्रेष्ठ विधान जो, करता वही अमात्य ।। 631

356. दृढ़ता कुल-रक्षण तथा, यत्न सुशिक्षा ज्ञान ।

पाँच गुणों से युक्त जो, वही अमात्य सुजान ।। 632

357. फूट डालना शत्रु में, पालन मैत्री-भाव ।

लेना बिछुडों को मिला, योग्य अमात्य स्वभाव ।। 633

358. शास्त्र जानते जो रहा, सूक्ष्म बुद्धि का भौन ।

उसका करते सामना, सूक्ष्म प्रश्न अति कौन ।। 636

359. हत्या कर उपदेश की, खुद हो अज्ञ नरेश ।

फिर भी धर्म अमात्य का, देना दृढ़ उपदेश ।। 638

टिप्पणी :—352. स्वीकार—स्वीकार करना ।

चर, चार, गुप्तचर, जासूस—समानार्थी हैं ।

45

360. स्नेहशीलता उच्च कुल, नृप-इच्छित आचार ।

राज-दूत में चाहिये, यह उत्तम संस्कार ।। 681

361. प्रेम बुध्दिमानी तथा, वाक् शक्ति

सविवेक ।

ये तीनों अनिवार्य हैं, राजदूत को एक ।। 682

362. दूत कार्य हित वह चले, जिसके रहे अधीन ।

शिक्षा अनुसंधानयुत, बुध्दि, रूप ये तीन ।। 684

363. परुष वचन को त्याग कर, करे समन्वित बात ।

लाभ करे प्रिय बोल कर, वही दूत है ज्ञात ।। 685

364. नीति सीख कर हो निडर, कर प्रभावकर बात ।

समयोचित जो जान ले, वही दूत है ज्ञात ।। 686

365. शुध्द आचरण संग-बल, तथा धैर्य

ये तीन ।

इनके ऊपर सत्यता, लक्षण
दूत प्रवीण ।। 688

366. चाहे हो प्राणांत भी, निज नृप का
गुण-गान ।

करते जो भय के बिना, दूत उसी को जान ।।
690

367. दूर

न पास न रह यथा, तापें उसी प्रकार ।

भाव बदलते भूप से, करना है

व्यवहार ।। 691

368. राजा को जो प्रिय रहें, उनकी हो
नहिं चाह ।

उससे स्थायी संपदा, दिलायगा

नरनाह ।। 692

369. यदि बचना है तो बचो, दोषों से विकराल ।

समाधान संभव नहीं, शक करते नरपाल ।। 693

46

370. कानाफूसी साथ ही, हँसी अन्य के साथ ।

महाराज के साथ में, छोड़ो इनका साथ ।। 694

371. छिपे सुनो मत भेद को, पूछो मत 'क्या बात' ।

प्रकट करे यदि नृप स्वयं, तो सुन लो वह बात ।। 695

372. 'चिरपरिचित हैं' यों समझ, नृप से दुर्व्यवहार ।

करने का अधिकार तो, करता हानि अपार ।। 700

373. बिना कहे जो जान ले, मुख-मुद्रा से भाव ।

सदा रहा वह भूमि का, भूषण महानुभाव ॥ 701

374. मनोभाव मुख-भाव से, जो जानता निहार ।
अंगों में कुछ भी दिला, करो उसे स्वीकर ॥ 703

375. अति विस्तृत होते हुए, रक्षणीय थल तंग ।
दुर्ग वही जो शत्रु का, करता नष्ट उमंग ॥ 744

376. जो रहता दुर्जेय है, रखता यथेष्ट अन्न ।
अंतरस्थ टिकते सुलभ, दुर्ग वही संपन्न ॥ 745

377. कहलाता है दुर्ग वह, जो रख सभी पदार्थ ।

देता संकट-काल में, योग्य वीर रक्षार्थ ॥ 746

378. पिल पड़कर या घेर कर, या करके छलछिद्र ।
जिसको हाथिया ना सके, है वह दुर्ग विचित्र ॥ 747

379. दुर्ग वही यदि चतुर रिपु, घेरा डालें घोर ।
अंतरस्थ डट कर लड़ें, पावें जय बरज़ोर ॥ 748

टिप्पणी :—374. अंग—सैन्य, राष्ट्र, धन, मित्रगण, दुर्ग, अमात्य, ये षडंग ।

47

380. चूहे-शत्रु समुद्र सम, गरजें तो क्या कष्ट ।
सर्पराज फुफकारते, होते हैं सब नष्ट ॥ 763

381. अविनाशी रहते हुए, छल का हो न शिंकार ।

पुश्तैनी साहस जहाँ, वही सैन्य निर्धार ।। 764

382. क्रोधित हो यम आ भिड़े, फिर भी हो कर एक ।

जो समर्थ मुठ-भेड़ में, सैन्य वही है नेक ।। 765

383. लगातार करना घृणा, क्षय होना औ' दैन्य ।

जिसमें ये होते नहीं, पाता जय वह सैन्य ।। 769

384. रखने पर भी सैन्य में, अगणित स्थायी वीर ।

स्थायी वह रहता नहीं, बिन

सेनापति धीर ।। 770

385. निर्दय साहस को कहें, महा धीरता सार ।
संकट में उपकार है, उसकी तीक्ष्ण धार ।। 773

386. क्रुद्ध नेत्र यदि देखकर, रिपु का भाल-प्रहार ।
झपकेंगे तो क्या नहीं, वह वीरों को हार ।। 775

387. करने से हित कार्य भी, मित्रों के उपयुक्त ।
शत्रु जनों को शीघ्र ही, मित्र बनाना युक्त ।। 679

388. मित्र बनाकर शत्रु को, जो करता व्यवहार ।
महिमा पर उस सभ्य की, टिकता है संसार ।।

389. कर्म-शेष रखना तथा, शत्रु जनों में शेष ।
अग्नि-शेष सम ही करें, दोनों हानि विशेष ।। 674

48

390. जब पौधा है काटना, जो तरु कांटेदार ।
बढ़ने पर घायल करे, छेदक का कर दार ।। 879

391. डरना मत उस शत्रु से, जो है खड्ग समान ।
डर उस रिपु के मेल से, जो हैं मित्र समान ।। 882

392. रेती से घिस कर यथा, लोहा होता क्षीण ।

गृह भी अन्तर्वैर से, होता है बलहीन ।। 888

393. अति छोटा ही क्यों न हो, तिल में यथा दरार ।

फिर भी अन्तर्वैर तो, है ही विनाशकार ।। 889

394. अक्षय उपज सुयोग्य जन, ह्रासहीन धनवान ।

मिल कर रहते हैं जहाँ, है वह राष्ट्र महान ।। 731

395. एकसाथ जब आ पड़ें, तब भी सह सब भार ।

देता जो राजस्व सब, है वह राष्ट्र अपार ।। 733

396. भूख अपार न है जहाँ, रोग निरंतर है न ।

और न नाशक शत्रु भी, श्रेष्ठ राष्ट्र की सैन ।।

397. होते नहीं विभिन्न दल, नाशक अन्तर्वैर ।
नृप-कंटक खूनी नहीं, वही राष्ट्र है, खैर ।। 735

398. प्रचुर उपज, नीरोगता, प्रसन्नता, ऐश्वर्य ।
और सुरक्षा, पांच हैं, राष्ट्र-अलंकृति वर्य ।। 738

399. राष्ट्र वही जिसकी उपज, होती है बिन यत्न ।
राष्ट्र नहीं वह यदि उपज, होती है कर यत्न ।। 739

400. उपर्युक्त साधन सभी, होते हुए अपार ।
प्रजा-भूप-सद्भाव बिन, राष्ट्र रहा बेकार ।। 740

टिप्पणी :—390-दार-चीर कर ।

अर्थनीति शतक

यद्यपि मिले न दैववश,
इच्छित फल जो भोग्य।

श्रम देगा पारिश्रमिक,
निज देह-श्रम-योग्य ॥ 415-619

अर्थनीति शतक

क्रम संख्या
क्र. सं. मूल में

401. धन जो देता है बना, नगण्य को भी गण्य ।

उसे छोड़कर मनुज को, गण्य वस्तु नहिं अन्य ।। 751

402. निर्धन लोगों का सभी करते हैं अपमान ।

धनवानों का तो सभी, करते हैं सम्मान ।। 752

403. पाप-मार्ग को छोड़ कर, न्याय रीति को जान ।

अर्जित धन है सुखद औ', करता धर्म प्रदान ।। 754

404. दया और प्रिय भाव से, प्राप्त नहीं जो वित्त ।

जाने दो उस लाभ को, जमे न उसपर चित्त ।। 755

405. निज धन रखते हाथ में, करना कोई कार्य ।

गिरि पर चढ़ गज-समर का,
ईक्षण सदृश विचार्य ।। 758

406. शत्रु-गर्व को चीरने, तेज शस्त्र
जो सिध्द ।
धन से बढ़कर है नहीं, सो
संग्रह कर वित्त ।। 759

407. धर्म काम दोनों सुलभ,
मिलते हैं इक साथ ।
न्यायार्जित
धन प्रचुर हो, लगता जिसके हाथ ।। 760

408. रहता जिनके हाथ में,
उमंग का स्थिर वित्त ।
'वित्त गया' कहते हुए, ना हों

अधीर-चित्त ।। 593 409. जिस उत्साही पुरुष का, अचल रहे उत्साह ।
वित्त चले उसके यहाँ, पूछ-ताछ कर राह ।। 594

52

410. जलज-नाल उतनी बड़ी, जितनी जल की थाह ।
नर होता उतना बड़ा, जितना हो उत्साह ।। 595

411. यों है उद्यम रहित का, करना परोपकार ।
कोई कायर व्यर्थ ज्यों, चला रहा तलवार ।। 614

412. बढ़ती धन-संपत्ति की, कर देता

है यत्न ।

दारिद्रय को घुसेड़ कर, देता रहे अयत्न ।। 616

413. करती है आलस्य में, काली ज्येष्ठा वास ।

यत्नशील के यत्न में, कमला का है वास ।। 617

414. यदि विधि नहिं अनुकूल है, तो न किसी का दोष ।

खूब जान ज्ञातव्य को, यत्न न करना दोष ।। 618

415. यद्यपि मिले न दैववश, इच्छित फल जो भोग्य ।

श्रम देगा पारिश्रमिक, निज देह-श्रम योग्य ।। 619

416. विधि पर भी पाते विजय, जो हैं उद्यमशील ।

सतत यत्न करते हुए, बिना
किये कुछ ढील ।। 620

417. प्रकट किया कर्मांत में, तो है
योग्य सुधीर ।
प्रकट किया यदि बीच में, देगा
अनंत पीर ।। 663

418. यद्यपि होगा बहुत दुख, कर
दृढ़ता से काम ।
सुख-फल-दायक ही रहा, जिसका शुभ
परिणाम ।। 669

419. जो विलंब के योग्य है, करो उसे
सविलंब ।
जो होना अविलंब ही, करो
उसे अविलंब ।। 672

420. जहाँ जहाँ वश चल सके,
भला कार्य हो जाय ।
वश न चले तो कीजिये, संभव देख
उपाय ।। 673

421. धन साधन अवसर तथा, स्थान व
निश्चित कर्म ।
पांचों पर श्रम के बिना, विचारकर कर
कर्म ।। 675

422. साधन में श्रम, विघ्न भी, पूरा हो
जब कर्म ।
प्राप्य लाभ कितना बड़ा, देख इन्हें
कर कर्म ।। 676

423. विधि है कर्मी को यही, जब
करता है कर्म ।
उसके अति मर्मज्ञ से, ग्रहण करे

वह मर्म ॥ 677

424. कितना भावी लाभ हो, इसपर देकर ध्यान ।
पूंजी-नाशक कर्म तो, करते नहिं मतिमान ॥ 463

425. अपयश के आरोप से, जो होते हैं भीत ।
शुरू न करते कर्म वे,
स्पष्ट न जिसकी रीत ॥ 464

426. करता अनुचित
कर्म तो, होता है नर नष्ट ।
उचित कर्म को छोड़ता, तो भी
होता नष्ट ॥ 466

427. होना
प्रवृत्त कर्म में, करके सोच-विचार।
'होकर प्रवृत्त सोच लें,' है

यह गलत विचार ॥ 467

428. अनुपयुक्त जो है तुम्हें,
जग न करे स्वीकार।
करना अनिंद्य कार्य ही, करके
सोच-विचार ॥ 470

429. मोर-पंख से ही सही, छकड़ा
लादा जाय।
यदि लादो
वह अत्यधिक, अक्ष भग्न हो जाय ॥ 475

430. तंग रहा तो कुछ नहीं, धन आने
का मार्ग।

यदि विस्तृत भी ना रहा,
धन जाने का मार्ग ॥ 478

431. निज धन की सीमा समझ,
यदि न किया निर्वाह ।

जीवन समृद्ध भासता, हो
जायगा तबाह ॥ 479

432. है क्या कार्य असाध्य
भी, यदि अवसर को जान ।

समुचित साधन के सहित, करता
कार्य सुजान ॥ 483

433. चाहे तो भूलोक भी, आ
जायेगा हाथ ।

समय समझ कर यदि करे,
युक्त स्थान के साथ ॥ 484

434. प्रेम बुद्धि दृढ़-चित्तता,
निर्लोभता-सुनीति ।

चारों जिसमें पूर्ण हों, उसपर
करो प्रतीति ।। 513

435. जो करता है धैर्य से, खूब समझ सदुपाय ।
उस छोड़ प्रिय बंधु को, कार्य न
सौंपा जाय ।। 515

436. कर्ता का लक्षण परख, परख कर्म की रीति ।
संयोजित कर
काल से, सौंपो सहित प्रतीति ।। 516

437. इस साधन से व्यक्ति यह,
कर सकता यह कार्य ।
परिशीलन कर इस
तरह, सौंप उसे वह कार्य ।। 517

438. ज्यों है नित्यदरिद्रता, करती
त्यों है असावधानता, करती

बुद्धि-विनाश ।
कीर्ति-विनाश ।। 532

439. पहले से रक्षा न की, रह कर
असावधान ।
विपदा आने पर रहा, पछताता अज्ञान ।। 535

टिप्पणी :—431 भासता—दिखाई पड़ता हुआ ।

440. सब जन से सब काल में, अप्रमाद
की बान ।
बरती जाय अचूक तो, उसके है न
समान ।। 536

441. जब अपने संतोष में, मस्त बनेंगे आप ।

गफ़लत से जो हैं मिटे, उन्हें विचारो आप ।। 539

442. अप्रसन्न जिसका वदन, भेंट नहीं आसान ।

ज्यों अपार धन भूत-वश, उसका धन भी जान ।। 565

443. जम जाये तो प्रचुर धन, अगर मूढ़ के पास ।

भोग करेंगे अन्य जन, परिजन तो उपवास ।। 837

444. लगना है संपत्ति का, एक मूढ़ के हस्त ।

पागल का होना यथा, ताड़ी पीकर मस्त ।। 838

445. प्रविधि-ज्ञान बिन मूढ़ यदि,
शुरू करेगा काम।
वह पहनेगा हथकड़ी, बिगडेगा
ही काम ॥ 836

446. किसको कहना मूढ़ता, जो है दारुण दाग।
हानिप्रद को ग्रहण कर, लाभप्रद का त्याग ॥ 831

447. परम मूढ़ता मूढ़ में,

जानो उसे प्रसिद्ध।
उन
सबमें आसक्ति हो, जो हैं कर्म निषिद्ध ॥
832

448. निर्दयता निर्लज्जता,
निर्विचार का भाव।
पोषण भी नहिं पोष्य का,

ये हैं मूढ़ स्वभाव ।। 833

449. बुद्धिहीन नर हृदय से,
करता है यदि दान ।
प्रतिग्राही का सुकृत वह, और नहीं
कुछ जान ।। 842

56

450. जितनी पीड़ा मूढ़ नर, निज को
देता आप ।
रिपु को भी संभव नहीं, देना
उतना ताप ।। 843

451. समझाने पर ना करे, और न
समझे आप ।
अंत समय तक जीव वह, रहा रोग अभिशाप ।।
848

452. समझाते नासमझ को, रहे

नासमझ आप ।
ज्यों समझेगा नासमझ, त्यों समझेगा आप ।। 849

453. जग जिसके अस्तित्व को, 'है' कह लेता मान ।
जो न मानता वह रहा, जग में प्रेत समान ।। 850

454. सत्प्रयत्न गंभीर मति, ये दोनों ही अंश ।
क्रियाशील जब हैं सतत, उन्नत होता वंश ।। 1022

455. 'कुल को उन्नत मैं करूँ', कहता है दृढ़ बात ।
तो आगे बढ़ कमर कस, दैव बँटावे हाथ ।। 1023

456. कुल उन्नति हित-दोष बिन, जिसका है आचार ।

बंधु बनाने को उसे, घेर रहा संसार ।। 1025

457. महावीर रण-क्षेत्र में, ज्यों हैं जिम्मेदार ।
त्यों है सुयोग्य व्यक्ति पर, निज कुटुंब का भार ।। 1027

458. जो होने देता नहीं, निज कुटुंब में दोष ।

उसका बने शरीर क्या, दुख-दर्दों का कोष ।। 1029

459. निज कर से हल जोत कर, खाना जिन्हें स्वभाव ।
मांगे नहीं, जो मांगता, देंगे बिना दुराव ।। 1035

टिप्पणी :—452. आप—स्वयं ।

460. हाथ खिंचा यदि कृषक का, उनकी भी नहिं टेक ।
जो ऐसे कहते रहे, 'हम हैं निस्पृह एक' ।। 1036

461. खेत जोतने से अधिक, खाद डालना श्रेष्ठ ।
बाद निरा कर सींचना, फिर भी रक्षण श्रेष्ठ ।। 1038

462. चलकर यदि देखे नहीं, मालिक देकर ध्यान ।
गृहिणी जैसी रूठकर, भूमि करेगी मान ।। 1039

463. 'हम दरिद्र हैं' यों करें, सुस्ती में आलाप ।
भूमि रूप देवी उसे, देख हँसेगी आप ।। 1040

464. यदि पूछो दारिद्रय सम, दुःखद कौन महान ।
तो दुःखद दारिद्रय सम, दरिद्रता ही जान ।। 1041

465. निर्धनता की पापिनी, यदि रहती है साथ ।
लोक तथा परलोक से, धोना होगा हाथ ।। 1042

466.

यद्यपि अनुसंधान कर, कहे तत्व का अर्थ ।
फिर भी प्रवचन दीन का, हो जाता है व्यर्थ ।। 1046

467. अन्तराल में आग के, सोना भी है साध्य ।
आँख झपकना भी ज़रा,
दारिद में नहिं साध्य ।। 1049

468. जिन्हें
स्वप्न में भी 'नहीं', कहने की नहिं बान ।
उनसे याचन भी रहा, देना ही सम

जान ।। 1054

469. बिना किये अवहेलना, देते जन को देख ।
मन ही मन आनंद से, रहा हर्ष-अतिरेक ।। 1057

8

58

470. शीतल थलयुत विपुल जग, यदि हो याचक-हीन ।
कठपुतली सम वह रहे, चलती सूत्राधीन ।। 1058

471. जबकि प्रतिग्रह चाहते, मिलें न याचक लोग ।
दाताओं को क्या मिले, यश पाने का योग ।। 1059

472. जो न छिपाकर प्रेम से, करते दान यथेष्ट ।
उनसे भी नहिं माँगना, कोटि गुना है श्रेष्ठ ।। 1061

473. यदि विधि की करतार ने, भीख मांग नर खाय ।
मारा मारा फिर वही, नष्ट-भ्रष्ट हो जाय ।। 1062

474. 'निर्धनता के दुःख को, करें माँगकर दूर' ।
इस विचार से क्रूरतर, और न है कुछ क्रूर ।। 1063

475. दारिदवश भी याचना, जिसे नहीं स्वीकार ।
भरने उसके पूर्ण-गुण, काफ़ी नहिं संसार ।। 1064

476. पका मांड ही क्यों न हो, निर्मल नीर समान ।
खाने से श्रम से कमा, बढ़कर मधुर न जान ।। 1065

477. यद्यपि माँगे गाय हित, पानी का ही दान ।
याचन से बदतर नहीं, जिह्वा को

अपमान ।। 1066

478. याचक सबसे याचना, यही कि जो भर स्वाँग ।
याचन करने पर न दें, उनसे कभी न माँग ।। 1067

479. 'नहीं' शब्द सुन जायगी, याचक जन की जान ।
गोपन करते मनुज के, कहाँ छिपेंगे प्राण ।। 1070

59

480. गाल-तोड़ घूँसा बिना, जो फैलाये हाथ ।
झाड़ेंगे नहिं अधम जन, निज जूठा भी हाथ ।। 1077

481. सज्जन प्रार्थन मात्र से, देते हैं

फलं-दान ।

नीच निचोड़ो ईख सम, तो देते रस-पान ।। 1078

482. गुण-सागर के कूल सम, जो मर्यादा-पाल ।

मर्यादा छोड़ें नहीं, यद्यपि युगान्त काल ।। 989

483. पालन करते जी रहें, जो निर्मल कुल-धर्म ।

यों जो हैं वे ना करें, छल से अनुचित कर्म ।। 956

484. हाथ खींचना ही पड़े, यद्यपि होकर दीन ।

छोड़ें वे न उदारता, जिनका कुल प्राचीन ।। 955

485. कोटि कोटि धन ही सही, पायें पुरुष कुलीन ।

तो भी वे करते नहीं, रहे कर्म जो हीन ।। 954

486. निर्धनता नर के लिये, होता नहिं अपमान ।
यदि है बल जिसको कहें, सर्व गुणों की खान ।। 988

487. भर

कर घर भर प्रचुर धन, जो करता नहिं भोग ।
धन के नाते मृतक है, जब है नहिं उपयोग ।। 1001

488. लोलुप संग्रह माल
का, यश का नहीं विचार ।
ऐसे लोभी का जनम, है पृथ्वी
को भार ।। 1003

489. जो करते
नहिं दान ही, करते भी नहिं भोग ।
कोटि कोटि धन क्यों न हो, निर्धन हैं वे लोग ।। 1005

490. योग्य व्यक्ति को कुछ न दे, स्वयं न करता भोग ।

विपुल संपदा के लिये, इस गुण का नर रोग ॥ 1006

491. कुछ देता नहिं अधन को, ऐसों का धन जाय ।

क्वाँरी रह अति गुणवती, ज्यों बूढ़ी हो जाय ॥ 1007

492. अप्रिय जन के पास यदि, आश्रित हो संपत्ति ।

ग्राम-मध्य विष-वृक्ष ज्यों, पावे फल-संपत्ति ॥ 1008

493. प्रेम-भाव तज कर तथा, भाव धर्म से जन्य ।

आत्म-द्रोह कर जो जमा, धन हथियाते अन्य ॥ 1009

494. जो है प्राप्त असभ्य को,
धन-संपत्ति अमेय ।
कलश-दोष से फट गया, शुद्ध दूध
सम ज्ञेय ।। 1000

495. छल से धन को जोड़कर, रखने
की तदबीर ।
कच्चे मिट्टी-कलश में, भर रखना
ज्यों नीर ।। 660

496. रुला अन्य को प्राप्त सब, रुला उसे
वह जाय ।
खोकर भी सत्संपदा, पीछे फल
दे जाय ।। 659

497. काम क्रोध मद दोष से, जो
होते हैं मुक्त ।
उनकी जो बढ़ती हुई, होती
महिमा-युक्त ।। 431

498. जो धन में आसक्त है, बिना
किये कर्तव्य ।

जमता उसके पास जो, व्यर्थ-जाय वह द्रव्य ।। 437

499. शिक्षित के दारिद्रय से करती अधिक विपत्ति ।
मूर्ख जनों के पास जो, जमी हुई संपत्ति ।। 408

500. सब धन से संपन्न हैं, जो होते मतिमान ।
चाहे सब कुछ क्यों न हो, मूर्ख दरिद्र समान ।। 430

टिप्पणी :—491. जाय—व्यर्थ ।

शृंगार शतक

मृदुतर होकर सुमन से,
जो रहता है काम ।

बिरले जन को प्राप्त है,
उसका शुभ परिणाम ॥ 578-1289

शृंगार

501. क्या यह है देवांगना,
या नारी कुंडल-सजी,

502. क्या यम है या आँख

शतक

या सुविशेष मयूर ।
मन है भ्रम में चूर ।। 1081

[नायक * स्वगत]

है, या है मृगी सुरंग । "
इस मुग्धा की दृष्टि में, है तीनों का ढंग
।। 1085

503. अनत कुचों पर

नारि के, पड़ा रहा जो पाट । "
मद-गज के दृग ढांकता, मुख-पट सम

वह ठाट। 1087

504. सरल दृष्टि हरिणी सदृश, औ' रखती जो लाज। "

उसके हित गहने बना, पहनाना क्या काज ।। 1089

505. हर्षक है केवल उसे, जो करता है पान। "

दर्शक को हर्षक नहीं, मधु तो काम समान ।। 1090

506. मैं देखूँ तो डालती, दृष्टि भूमि की ओर। "

ना देखूँ तो देख खुद, मन में रही

हिलोर ।। 1094 507. सीधे वह नहीं देखती,

यद्यपि मेरी ओर। "

सकुचाती सी एक दृग, मन में रही हिलोर ।। 1095

508. यद्यपि वे अनभिज्ञ सी, करती हैं कटु बात । " बात नहीं है क्रुद्ध की, झट होती यह ज्ञात ।। 1096

---

* नायक, नायिका, सखा, और सखी के जिन पात्रों का उल्लेख इस शतक में हुआ है वे प्राचीन साहित्य के परंपरानुसार टीकाकारों से कल्पित हैं । मूल ग्रंथ में नहीं हैं*।

509. रुष्ट दृष्टि है शत्रु सम, कटुक वचन सप्रीति । "
दिखना मानों अन्य जन, प्रेमी जन की रीति ।। 1097

510. मैं देखूँ तो, स्निग्ध हो, करे मंद वह हास । "
सुकुमारी में उस समय, एक रही छवि ख़ास ।। 1098

511. उदासीन हो देखना, मानों हों

अनजान ।

प्रेमी जन के पास ही, रहती ऐसी बान ।। 1099

[सखी नायक से]

512. नयन नयन मिल देखते, यदि होता है योग । "

वचनों के मुँह से कहे, है नहिं कुछ उपयोग ।। 1100

513. हटने पर देती जला, निकट गया तो शीत ।

आग कहाँ से पा गयी, बाला यह विपरीत ।। 1104

[नायक सखा से]

514. रे अनिच्च तू धन्य है, तू है कोमल प्राण ।

मेरी जो है प्रियतमा, तुझसे

मृदुतर जान ॥ 1111

[नायक स्वगत]

515. पल्लव तन मोती रदन, प्राकृत गंध सुगंध ।
भाला कजरारा नयन, जिसके बांस-स्कंध ॥ 1113

[नायक सखा से]

516. क्षय पाकर फिर पूर्ण हो, शोभित रहा मयंक ।
इस नारी के वदन पर,
रहता कहाँ कलंक ॥ 1117

[नायक स्वगत]

टिप्पणी :— 514. अनिच्च—एक तरह का अति मृदु फूल ।

516. मयंक—चांद ।

65

517. मृदु अनिच्च का फूल औ,' हंसी का मृदु तूल ।
बाला के मृदु पाद हित, रहे गोखरू शूल ।। 1120
[नायक सखी से]

518. मधुर भाषिणी सुतनु का, सित रद निःसृत नीर ।
यों लगता है मधुर वह,
ज्यों मधु मिश्रित क्षीर ।। 1121
[नायक स्वगत]

519. यों विचार कर नयन में, करते वास सुजान ।
नहीं आंजतीं हम नयन, छिप जायेंगे

जान ।। 1127

[नायिका स्वगत]

520. यों विचार कर हृदय में, करते वास सुजान । "

डर है खाने से गरम, जल जायेंगे जान ।। 1128

521. प्रचलन हुआ प्रवाद का, सो टिकता प्रिय प्राण ।

इसका मेरे भाग्य से, लोगों को नहिं ज्ञान ।। 1141

[नायक सखी से]

522. होते होते मस्त ज्यों, प्रिय लगता मधु-पान । "

हो हो प्रकट प्रवाद से, मधुर काम की बान ।। 1145

523. प्रिय

से केवल एक दिन, हुई मिलन की बात।
लेकिन चंद्रग्रहण सम, व्यापक हुआ प्रवाद ॥ 1146

[नायिका सखी से]

524. पुरजन-निंदा खाद है, माँ का कटु वच नीर। "
इनसे पोषित रोग यह, बढ़ता रहा अधीर ॥ 1147

525. काम-शमन की सोचना, कर अपवाद प्रचार। "
अग्नि-शमन घी डालकर, करना सदृश विचार ॥ 1148

9

526. अगर बिछुड़ जाते नहीं, मुझे जताओ नाथ ।
जो जीयें उनसे कहो, झट फिरने की बात ।। 1151

[सखी नायक से]

527. पहले उनकी दृष्टि तो, देती थी सुख-भोग ।
विरह भीति से दुखद है, अब उनका संयोग ।। 1152

[नायिका सखी से]

528. बचा सके तो यों बचा, जिससे चलें न नाथ । "
फिर मिलना संभव नहीं, छोड़ गये यदि साथ ।। 1155

529. छूने पर ही तो जला, सकती है बस आग । "
काम-ज्वर सम वह जला, सकती क्या कर त्याग ।।

1159

530. यथा उलीचे सोत का, बढ़ता रहे बहाव। "

बढ़ता है यह रोग भी, यदि मैं करूँ छिपाव 1161

531. पार न पाती तैरकर, काम समुद्र महान।

अर्द्ध रात्रि में भी निविड, रही अकेली जान ।। 1167

[नायिका सखी से]

532. सुला जीव सबको रही, दया-पात्र यह रात्। "

इसके मुझको छोड़कर, और न कोई साथ।। 1168

533. अब रोते हैं क्यों नयन, स्वयं दिखा आराध्य। "

मुझे हुआ यह रोग है, जो बन

गया असाध्य ॥ 1171

534. बिन सोचे समझे नयन, प्रिय को उस दिन देख । "
अब क्यों होते हैं व्यथित, रखते कुछ न विवेक ॥ 1172

टिप्पणी :—533. रोग—काम रोग ।

67

535. नयनों ने देखा स्वयं, आतुरता के साथ । "
अब जो रोते हैं स्वयं, है हास्यास्पद बात ॥ 1173

536. ओ हो यह अति सुखद है, मुझको दुख में डाल । "
अब ये दृग सहते स्वयं, यह दुख, हो बेहाल ॥ 1176 537. ना आवें तो नींद नहीं, आवें नींद न आय । "
दोनों हालों में नयन, सहते हैं अति हाय ॥ 1179 538. जिस नारी को प्राप्त है, प्राण-नाथ का प्यार । "

'जीऊँगी' यों गर्व का, उसका है अधिकार ।। 1193 539. प्यार किया मैंने जिन्हें, यदि खुद किया न प्यार । "

तो उनसे क्या हो सके, मेरा कुछ उपकार ।। 1195
540. प्रेम एक-तरफ़ा रहे, तो है दुखद अपार । "

दोय तरफ़ हो तो सुखद, ज्यों डंडी पर भार ।। 1196 541. स्मरण मात्र से दे सके, अक्षय परमानन्द ।

सो तो मधु से काम है,

बढ़कर मधुर अमन्द ।। 1201

[नायक सखा से]

542. छींका ही मैं चाहती, छींक गयी दब साथ ।

स्मरण किया ही चाहते, भूल गये

क्या नाथ ।। 1203

[नायिका सखी से]

543. मेरे तो दिल में सदा, उनका रहा निवास । "

उनके दिल में क्या रहा, मेरा भी आवास ।। 1204

537. हाय—कष्ट ।

टिप्पणी :—542. यह विश्वास है कि सुदूर रहनेवाले बन्धु के स्मरण करने पर छींक आती है ।

544. निज दिल से मुझको हटा, कर पहरे का साज । "

मेरे दिल आते सदा, आती क्या नहिं लाज ।। 1205

[नायिका सखी से]

545. प्रियतम का जो दूत बन, आया स्वप्नाकार । ”
उसका मैं कैसे करूँ, योग्य अतिथि-सत्कार ।। 1211

546. जाग्रत रहने पर कृपा, करते नहीं सुजान । ”
दर्शन देते स्वप्न में, तब तो रखती प्राण ।। 1213

547. जाग्रति में करते नहीं, नाथ कृपा कर योग । ”
खोज स्वप्न ने ला दिया, सो उसमें सुख-भोग ।। 1214

548. आँखों में जब तक रहे, जाग्रति में सुख-भोग । ”
सपने में भी सुख रहा, जब तक

दर्शन-योग ।। 1215

549. यदि न रहे यह जागरण, तो मेरे प्रिय नाथ । "
जो आते हैं स्वप्न में,
छोड़ न जावें साथ ।। 1216

550. कृपा न कर जागरण में, निष्ठुर रहे सुजान । "
पीड़ित करते किसलिये,
मुझे स्वप्न में प्राण ।। 1217

551. गले लगाते नींद में, पर जब पड़ती जाग । "
तब दिल के अंदर सुजन, झट जाते हैं भाग ।। 1218

552. जाग्रति में अप्राप्त को, कोसेंगी वे वाम । "
जिनके प्रिय ने स्वप्न में, मिल न दिया आराम ।। 1219

टिप्पणी :—552. वाम-स्त्रियाँ ।

553. तेरी, सांझ, चिरायु हो, तू नहिं संध्याकाल ।
ब्याह हुओं की जान तू, लेता अंतिम काल ।। 1221

[नायिका संध्या से]

554. तेरी, सांझ, चिरायु हो, तू निष्प्रभ विभ्रान्त । ”
मेरे प्रिय के सम निठुर, है क्या तेरा कान्त ।। 1222

555. कंपित संध्या निष्प्रभा, मुझको बना विरक्त ।
आती है देती मुझे, पीड़ा अति ही सख्त ।। 1223

[नायिका सखी से]

556. वध करने के स्थान में, ज्यों आते

जल्लाद ।"
त्यों आती है सांझ भी, जब रहते नहिं नाथ ।। 1224

557. मैंने क्या कुछ कर दिया, प्रातः का उपकार ।"
वैसे तो क्या कर दिया, संध्या का अपकार ।। 1225

558. पीड़ित करना सांझ का तब था मुझे न ज्ञात ।"
गये नहीं थे बिछुड़ कर, जब मेरे प्रिय नाथ ।। 1226

559. काम-रोग तो सुबह को, पाकर कली-लिबास ।"
दिन भर मुकुलित शामको, पाता पूर्ण विकास ।। 1227

560. पीले पड़कर जो नयन, बरस रहे

हैं नीर।

मानों कहते निठुरता, प्रिय की

जो बेपीर ।। 1232

[सखी नायिका से]

561. स्कंध शिथिल चूड़ी सहित, देख मुझे जो आप।
कहती हैं उनको निठुर, उससे पाती ताप ।। 1236
[नायिका सखी से]

---

559. लिबास-भेस।

70

562. रोग-शमन हित रे हृदय, जो यह हुआ असाध्य।

क्या न कहोगे सोचकर, कोई औषध साध्य ।। 1241

[नायिका दिल से]

563. हृदय ! जिओ तुम, नाथ तो, करते हैं नहिं प्यार।"

पर तुम होते हो व्यथित, यह मूढ़ता अपार ।। 1242

564. नेत्रों को भी ले चलो, अरे हृदय, यह जान।"

उनके दर्शन के लिये, खाते मेरी जान॥ 1244

565. जब प्रिय देते मिलन सुख, गया नहीं तू रूठ।"

दिल, तू जो अब क्रुद्ध है, वह है केवल झूठ॥ 1246

566. अरे सुदिल, तज काम को, या लज्जा को त्याग।"

मैं तो सह सकती नहीं, इन दोनों की आग॥ 1247

567. तेरे अन्दर जब रहा, प्रियतम का आवास।"

रे दिल, उनका स्मरण कर, जावे किसके पास॥ 1249

568. चली गयी मैं रूठने,

किन्तु हृदय को देख ।

वह प्रवृत्त है मिलन हित, गले लगी, हो एक ।। 1259

[नायिका सखी से]

569. अग्नि-दत्त मज्जा यथा, जिनका दिल द्रवमान । ”

“ उनको प्रिय के पास रह, क्या संभव है मान ।। 1260

570. छू कर गिनते विरह दिन, घिस अंगुलियाँ क्षीण । ”
तथा नेत्र भी हो गये, राह देख छवि-हीन ।। 1261

टिप्पणी:—562 रोग - काम रोग । 564 जान - जानकर देखकर । 569 मान - रूठना ।

571. दृग सम प्रिय प्रिय आ मिलें, तो

कर बैठूं मान ?

या आलिंगन ही करूं, या दोनों, हे प्राण ।। 1267

[नायिका सखी से]

572. रखने पर भी कर छिपा, मर्यादा को पार ।

हैं तेरे ही नेत्र कुछ, कहने को तैयार ।। 1271

[नायक नायिका से]

573. बंद कली में गंध ज्यों, रहती है हो बंद ।

त्यों इंगित इक बंद है, मुग्धा-स्मिति में मंद ।। 1274

[नायक सखी से]

574. मुद होना स्मृति मात्र से, दर्शन से उल्लास ।

ये गुण नहीं शराब में, रहे काम के पास ।। 1281

575. गयी रूठने री सखी, करके
मान-विचार । ”
मेरा दिल वह भूलकर, मिलने
को तैयार ।। 1284

576. कूँची
को जब आँजते, यथा न देखें अक्ष । ”
उनकी भूल न देखती, जब हैं
नाथ समक्ष ।। 1285

577. जब प्रिय को मैं देखती,
नहीं देखती दोष । ”
ना देखूं तो देखती, कुछ न,
छोड़कर दोष ।। 1286

578.
मृदुतर होकर सुमन से, जो रहता है

काम ।

बिरले जन को प्राप्त है, उसका शुभ परिणाम ।। 1289

[नायक स्वगत]

टिप्पणी :—576. अक्ष-आँख ।

579. उत्कंठित मुझसे अधिक, रही मिलन हित बाल । "

मान दिखाकर नयन से, गले लगी तत्काल ।। 1290

580. उनका दिल उनका रहा, देते उनका साथ ।

उसे देख भी, हृदय तू, क्यों नहिं मेरे साथ ।। 1291

[नायिका दिल से]

581. प्रिय को निर्मम देख भी, 'वे नहिं हों नाराज़' ।

यों विचार कर तू चला, रे दिल उनके पास ।। 1292

[नायिका दिल से]

582. रे दिल, जो हैं कष्ट में, उनके हैं नहिं इष्ट । "
सो क्या उनका पिछलगा, बना यथा निज इष्ट ।। 1293

583. न मिले तो भय, या मिले, तो भेतव्य वियोग ।
मेरा दिल है चिर दुखी, वियोग या संयोग ।। 1295

[नायिका सखी से]

584. नाथ-उपेक्षा निंद्य है, यों करके सुविचार । "
करता उनका गुण-स्मरण, यह दिल जीवन-प्यार ।। 1298

585. संकट होने पर मदद, कौन करेगा हाय ।
जबकि निजी दिल आपना, करता नहीं सहाय ।। 1299

[नायक स्वगत]

586. बंधु बनें नहिं अन्य जन, है यह सहज विचार ।" जब अपना दिल ही नहीं, बनता नातेदार ।। 1300

टिप्पणी : —579. वाल - बाला । 582. इष्ट-मित्र, इच्छानुसार ।
585. आपना - अपना ।
586. विचार - विचार कर ।

587. आलिंगन करना नहीं, ठहरो करके मान ।
देखें हम उनको ज़रा, सहते ताप अमान ।। 1301

[सखी नायिका से]

588. ज्यों भोजन में नमक हो, प्रणय-कलह त्यों जान "
ज़रा बढ़ाओ तो उसे, ज़्यादा नमक समान ।। 1302

589. सभी स्त्रियाँ सम भाव से, करतीं दृग से भोग ।
रे विट, तेरे वक्ष से, मैं न करूँ संयोग ।। 1311

[नायिका नायक से]

590. कर बैठी थीं मान हम, छींक गये तब नाथ ।
यों विचार 'चिर जीव' कह, हम कर लेंगी बात ।। 1312

[नायिका सखी से]

591. सबसे बढ़ मैंने कहा, हम करते हैं प्यार।"

'किस किससे' कहती हुई, लगी रूठने यार॥ 1314

[नायक सखा से]

592. 'स्मरण किया' मैंने कहा, 'तो क्यों बैठे भूल'।"

यों कह मिले बिना रही, पकड़ मान का तूल॥ 1316

593. छींका तो, कह शुभ वचन, तभी बदल दी बात।"

'कौन स्मरण कर छींक दी', कह रोयी सविषाद॥ 1317

594. छींक दबाता मैं रहा, रोयी कह यह बैन।"

अपनी जो करती स्मरण, उसे छिपाते हैं न ॥ 1318

595. अगर मनाऊँ तो सही, यों कह होती रुष्ट।" 'करते होंगे अन्य को, इसी तरह से तुष्ट' ॥ 1319

टिप्पणी :—590 छींकने पर 'चिरजीव' कहने की प्रथा है।

10

74

596. देखूँ यदि मैं मुग्ध हो, यों कह करती रार।"

'देख रहे हैं आप सब, दिल में किसे विचार' ॥ 1320

597. खाने से, खाया हुआ, पचना सुखकर जान।

काम-भोग हित मिलन से, अधिक सुखद है मान ॥ 1326

[नायक स्वगत]

598. प्रणय-कलह में जो विजित,
उसे रहा जय योग । ”
वह तो जाना जायगा, जब होगा
संयोग ।। 1327

599. रत्नाभरण-सजी प्रिया, करे और
भी मान । ”
करें मनौती हम यथा, बढ़े रात्रि
का मान ।। 1329

600. रहा काम का मधुर रस, प्रणय-कलह
अवगाह । ”
फिर उसका है मधुर रस, मधुर मिलन
सोत्साह ।। 1330

विवेक शतक

अहंकार ममकार को,
जिसने किया समाप्त ।
देवों को अप्राप्य भी,
लोक करेगा प्राप्त ॥ 680-346

विवेक शतक

क्रम संख्या
क्र. सं. मूल में

601. मोक्षप्रद तो धर्म है, धन दे वही अमेय ।
उससे बढ़कर जीव को, है क्या कोई श्रेय ॥ 31

602. यथा शक्ति करना सदा, धर्म युक्त ही कर्म ।

तन से मन से वचन से, सर्व रीति से धर्म ॥ 33

603. दोष रहित मन का रहे,

इतना ही है धर्म ।

बाकी सब केवल रहे, ठाठ-बाट का कर्म ॥ 34

604. क्रोध लोभ फिर कटुवचन, और जलन ये चार ।

इनसे बचकर जो हुआ, वही धर्म का सार ॥ 35

605. 'बाद करें मरते समय', सोच न यों कर धर्म ।

जान जाय जब छोड़ तन, चिर संगी है धर्म ॥ 36

606. धर्म-कर्म

के सूफल का, क्या चाहिये प्रमाण ।
शिविकारूढ, कहार के, अंतर

से तू जान ॥ 37

607. करने योग्य

मनुष्य के, धर्म-कर्म ही मान ।
निंदनीय

जो कर्म हैं, वर्जनीय ही जान ॥ 40

608. सर्व धनों में श्रेष्ठ है,
दया-रूप संपत्ति । नीच जनों के

पास भी, है भौतिक संपत्ति ॥ 241

609. सत् पथ पर चल परख कर, दयाव्रती बन जाय ।

धर्म-विवेचन सकल कर, पाया वही सहाय

।। 242

610. अंधकारमय नरक है, जहाँ न सुख लवलेश ।

दयापूर्ण का तो वहाँ, होता नहीं प्रवेश ।। 243

611. प्राप्य नहीं धनरहित को, ज्यों इहलौकिक भोग ।

प्राप्य नहीं परलोक का, दयारहित को योग ।। 247

612. निर्धन भी फूले-फले, स्यात् धनी बन जाय ।

निर्दय है निर्धन सदा, काया पलट न जाय ।। 248

613. रोब जमाते निबल पर, निर्दय करे विचार ।
अपने से भी प्रबल के, सम्मुख खुद लाचार ।। 250

614. मांस-वृद्धि अपनी समझ, जो खाता पर-मांस ।
कैसे दयार्द्रता-सुगुण, रहता उसके पास ।। 251

615. धन का भोग उन्हें नहीं, जो न करेंगे क्षेम ।
मांसाहारी को नहीं, दयालुता का नेम ।। 252

616. क्रय न करेंगे लोग यदि, करने को आहार ।
आमिष लावेगा नहीं, कोई विक्रयकार ।। 256

617. आमिष तो इक जन्तु का, व्रण है यों सुविचार ।
यदि होगा तो चाहिये, तजना मांसाहार ।। 257

618. यज्ञ हज़ारों क्या किया, दे दे हवन यथेष्ट । किसी जीव को हनन कर, मांस न खाना श्रेष्ठ ।। 259

619. जो न करेगा जीव-वध, और न मांसाहार ।
हाथ जोड़ सारा जगत, करता उसे जुहार ।। 260

टिप्पणी :—615. नेम-नियम ।

79

620. लक्षण क्या उस पंथ का, जिसको कहें सुपंथ ।
जीव-हनन वर्जन करे, जो पथ वही

सुपंथ ।। 324

621. हाथ उठावेगा नहीं, जीवन-भक्षक काल ।

उस जीवन पर, जो रहे, वध-निषेध-व्रत-पाल ।। 326

622. प्राण-हानि अपनी हुई, तो भी हो निज धर्म ।

अन्यों के प्रिय प्राण का, करें न नाशक कर्म ।। 327

623. वंचक के आचार को, मिथ्यापूर्ण विलोक ।

पांचों भूत शरीरगत, हँस दें मन में रोक ।। 271

624. महा साधु का वेष धर, दमन-शक्ति नहिं, हाय ।

व्याघ्र-चर्म ओढ़े हुए, खेत चरे ज्यों गाय ।। 273

625. शास्त्रों का कर अध्ययन, अर्थ जानते गूढ़ ।
शिक्षक भी रह नहिं वशी,
उनसे बड़ा न मूढ़ ।। 834

626. रहते तापस भेस में, करना पापाचार ।
झाड़-आड़ चिड़िहार ज्यों, पंछी पकड़े मार ।। 274

627. मोह-मुक्त मन तो नहीं, है निर्मम की बान ।
मिथ्याचारी के सदृश, निष्ठुर नहीं महान ।। 276

628. बाहर से है लालिमा, हैं घुंघुची समान ।
उसका
काला अग्र सम, अन्दर है अज्ञान ।। 277

629. नहा तीर्थ में ठाट से,

रखते तापस वेष ।
मिथ्याचारी हैं बहुत, हृदय शुद्ध नहिं लेश ।। 278

80

630. साधक ने यदि तज दिया, जग-निंदित सब काम ।
उसका मुंडा या जटिल, बनना है बेकाम ।। 280

631. चोरी से पर-संपदा, पाने का कुविचार ।
लाना भी मन में बुरा, है यह पापाचार ।। 282
632. चोरी-कृत धन में रहे, बढ़ने का आभास ।
पर उसका सीमारहित, होता ही

है नाश ।। 283

633. है ग़फ़लत की ताक में, पर-धन की है चाह ।

दयाशीलता-प्रेम की, लोभ न पकड़े राह ।। 285

634. परिभाषा है सत्य की, 'वचन विनिर्गत-हानि' ।

सत्य कथन से अल्प भी, न हो किसी को ग्लानि ।। 291

635. मिथ्या-भाषण यदि करे, दोष रहित कल्याण ।

तो यह मिथ्या-कथन भी, मानो सत्य समान ।। 292

636. मन से सात्याचरण का, जो करता अभ्यास ।

जगके सब के हृदय में, करता है वह वास ।।

637. बाह्य-शुद्धता देह को, देता ही है तोय ।
अन्तःकरण-विशुद्धता, प्रकट सत्य से जोय ।। 298

638. दीपक सब दीपक नहीं, जिनसे हो तम-नाश ।
सत्य-दीप ही दीप है, पावें साधु प्रकाश ।। 299

639. हमने अनुसंधान से, जितने पाये तत्व ।
उनमें कोई सत्य सम, पाता नहीं महत्व ।। 300

640. जहाँ चले वश क्रोध का,
कर उसका अवरोध ।
अवश क्रोध का क्या किया, क्या न किया उपरोध ।।
301 641. वश न चले जब क्रोध का,
तब है क्रोध खराब । अगर चले वश
फिर वही, सबसे रहा खराब ।। 302

642. किसी व्यक्ति पर
भी कभी, क्रोध न कर, जा भूल ।
क्योंकि अनर्थों का वही, क्रोध
बनेगा मूल ।। 303
643. हास और उल्लास को, हनन करेगा
क्रोध ।
उससे बढ़कर कौन है, रिपु जो करे
विरोध ।। 304
644. जो मन में नहिं लायगा, कभी क्रोध
का ख्याल ।
मनचाही सब वस्तुएँ, उसे प्राप्य

तत्काल ।। 309

645. बुरा किया

तो कर भला, बुरा भला फिर भूल ।

पानी पानी हो रहा, बस उसको यह

शूल ।। 314

646. अपकारी

को भी अगर, किया नहीं उपकार ।

होता क्या उपयोग है, होकर

गुण-आगार ।। 987

647. माने नहिं पर-दु:ख को, यदि निज दु:ख समान ।
तो होता क्या लाभ है, रखते तत्वज्ञान ।। 315

648. कोई समझे जब स्वयं, बुरा फलाना कर्म ।

अन्यों पर उस कर्म को, नहीं

करे, यह धर्म ।। 316

649. किसी व्यक्ति को अल्प भी, जो भी समय अनिष्ट ।

मनपूर्वक करना

11

नहीं, सबसे यही वरिष्ठ ।। 317

82

650. जिससे अपना अहित हो, उसका है दृढ़ ज्ञान ।

फिर अन्यों का अहित क्यों, करता है नादान ।। 318

651. दिया सबेरे अन्य को, यदि तुमने संताप ।

वही ताप फिर सांझ को, तुमपर आवे आप ।। 319

652. रंग-भूमि में ज्यों जमे, दर्शक गण की भीड़ ।

जुड़े प्रचुर संपत्ति त्यों, छँटे यथा वह भीड़ ।। 332 653. धन की प्रकृति अनित्य है, यदि पावे ऐश्वर्य ।

तो करना तत्काल ही, नित्य धर्म सब वर्य ।। 333

654. काल-मान सम भासता, दिन है आरी-दांत ।

सोचो तो वह आयु को, चीर रहा दुर्दांत ।। 334

655. जीभ बंद हो, हिचकियाँ, लगने से ही पूर्व ।

चटपट करना चाहिये, जो है कर्म अपूर्व ।। 335

656. कल जो था, बस, आज तो, प्राप्त किया पंचत्व ।

पाया है संसार ने, ऐसा बड़ा

महत्व ।। 336

657. अगले क्षण क्या जी
रहें, इसका है नहिं बोध ।
चिंतन कोटि न, अनगिनत,
करते रहें अबोध ।। 337

658. अंडा फूट हुआ अलग, तो पंछी
उड़ जाय ।
वैसा देही देह का, नाता जाना
जाय ।। 338

659. निद्रा सम ही जानिये, होता है देहांत ।
जगना सम है जनन फिर, निद्रा के उपरांत ।। 339

83

660. रमता है सुख-भोग में फल दे जब
सत्कर्म ।

गड़बड़ करना किसलिये, फल दे जब दुष्कर्म ।। 376 661 भाग्य विधायक के किये, बिना भाग्य का योग ।

कोटि चयन के बाद भी, दुर्लभ है सुख-भोग ।। 377 662. भावी से बढ़कर कहो, क्या है शक्ति कराल ।

हावी उसपर हो अगर, अन्य चलावे चाल ।। 380

663. तप नियमों को पालते, सहना कष्ट महान ।

जीव-हानि वर्जन तथा, तप का यही निशान ।। 261

664. दुखदायी रिपु का दमन, प्रिय जन का उत्थान ।

स्मरण मात्र से हो सके, तप के बल अम्लान ।। 264

665. तप तप कर ज्यों

स्वर्ण की, होती निर्मल कांति ।
तपन ताप से ही तपी, चमक
उठे उस भांति ।। 267

666. जिस तपसी को प्राप्त है, तप की
शक्ति महान ।
यम पर भी उसकी विजय,
संभव है तू जान ।। 269

667. सद्गुण रूपी अचल पर, जो हैं चढ़े
सुजान ।
क्षण का उनका क्रोध भी,
सहना दुष्कर जान ।। 29

668. आदर
न कर महान का, करे अगर व्यवहार ।
होगा उसे महान से, दारुण दुःख
अपार ।। 892

669. जल जाने पर आग से, बचना

संभव जान ।
बचता नहीं महान का, जो करता अपमान ।।

896

670. जो महान हैं अचल सम, करते अगर विचार । जग में शाश्वत सम धनी, मिटता सह परिवार ।। 898

671. उत्तम व्रतधारी अगर, होते हैं नाराज ।
मिट जायेगा इन्द्र भी, गँवा बीच में राज ।। 899

672. तप:श्रेष्ठ यदि क्रुद्ध हों, रखते
रखते बड़े सहाय भी, होता
673. एक-निष्ठ रहती हुई, नारी
आत्म-संयमी जो रहा, उसका

674. परच्छिद्र देना छिपा, है बड़ा प्रभाव।

नहीं बचाव ।। 900

सती समान।

हो बहुमान ।। 974

महानता-भाव ।

दोषों की ही घोषणा, है तुच्छता-स्वभाव ।। 980

675. वध-निषेध-व्रत लाभ ही, तप को रहा प्रधान।

पर-निंदा वर्जन रही, गुणपूर्णता महान ।। 984

676. घटता है गुण-पूर्ण का, यदि गुण का आगार ।
तो विस्तृत संसार भी, ढो सकता नहिं भार ।। 990

677.
ज्यों ज्यों मिटती जायगी, जिस जिसमें आसक्ति ।
त्यों त्यों तद्गत दुःख से, मुक्त हो रहा व्यक्ति ।। 341

678. दृढ़ता से करना दमन, पंचेन्द्रियगत राग ।
उनके प्रेरक वस्तु सब, करो एक दम त्याग ।। 343

679. भव-बंधन को काटतें, बोझा है ही देह ।
फिर औरों से तो कहो, क्यों संबंध सनेह ।। 345

85

680. अहंकार ममकार को, जिसने किया समाप्त ।
देवों को अप्राप्य भी, लोक करेगा प्राप्त ।। 346
681. पूर्ण त्याग से पा चुके, मोक्ष-धाम वे धन्य ।
भव-बाधा के जाल में, फँसें मोह वश अन्य ।। 348
682. मिटते ही आसक्ति के, होगी भव से मुक्ति ।

बनी रहेगी अन्यथा, अनित्यता की भुक्ति ।। 349

683. वीतराग के राग में, हो तेरा अनुराग ।

सुदृढ़ उसी में रागना, जिससे पाय विराग ।। 350

684. मिथ्या में जब सत्य का, होता भ्रम से भान ।

देता है भव-दुःख को, भ्रममूलक वह ज्ञान ।। 351

685. मोह-मुक्त हो पा गये, निर्मल तत्वज्ञान ।

भव-तम

को वह दूर कर, दे आनन्द महान ।। 352

686. जिसने संशय-मुक्त हो, पाया ज्ञान-प्रदीप ।
उसको पृथ्वी से अधिक, रहता मोक्ष समीप ।। 353

687. किसी तरह भी क्यों नहीं, भासे अमुक पदार्थ ।
तत्व-बोध उस वस्तु का, जानो ज्ञान यथार्थ ।। 355

688. जगदाश्रय को समझ यदि, बनो
स्वयं निर्लिप्त ।
नाशक भावी दुःख सब,
करें कभी नहिं लिप्त ।। 359

689. काम क्रोध औ' मोह का,
न हो नाम का योग ।
तीनों के मिटते,
मिटे, कर्म-फलों का रोग ।। 360

690. जन्म-नाश को चाह हो, यदि होनी है चाह ।
चाह-नाश की चाह से, पूरी हो वह चाह ॥ 362

691. चाह गयी तो है वही, पवित्रता या मुक्ति ।
करो सत्य की चाह तो, होगी चाह-विमुक्ति ॥ 364

692. तृष्णा का यदि नाश हो, जो है दुःख कराल ।
इस जीवन में भी मनुज, पावे सुख चिर काल ॥ 369

693. तृष्णा को त्यागो अगर, जिसकी कभी न तुष्टि ।
वही दशा दे मुक्ति, जो, रही सदा संतुष्टि ॥ 370

694. जन्म-मोक्ष के ज्ञान से, ग्रहण किया संन्यास ।
उनकी महिमा का बहुत, जग में रहा प्रकाश ।। 23

695. जो है इन्द्रिय-निग्रही, उसकी शक्ति अथाह ।
स्वर्गाधीश्वर इन्द्र ही, इसका रहा गवाह ।। 25

696. स्पर्श रूप रस गंध औ', शब्द मिला कर पंच ।
समझे इनके तत्व जो, समझे वही प्रपंच ।। 27

697. करते हैं सब जीव से, करुणामय व्यवहार ।
कहलाते हैं तो तभी, साधु दया-आगार ।। 30

698. राग-द्वेष विहीन के, चरणाश्रित जो लोग ।
दुःख न दे उनको कभी, भव-बाधा का रोग
॥ 4

699. ईश्वर उपमारहित का, नहीं पदाश्रय युक्त ।
तो निश्चय संभव नहीं, होना
चिंता-मुक्त ॥ 7 700. धर्म-सिंधु करुणेश
के, शरणागत है धन्य ।
उसे छोड़ दुख-सिंधु को, पार न पाये
अन्य ॥ 8———————

टिप्पणी :—691 सत्य-परब्रह्म ।
695 अहल्या की कहानी का संकेत है ।